महारामायण

तृतीय (बन साधन) खण्ड

(महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज कृत)

—:०:—

सम्पादक—

नन्दू भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:०:—

अ० स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—❀—

प्रकाशक—

नन्दू भाई प्रधान

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,

पो० दयाल नगर, अलीगढ़

द्वितीय संस्करण सं० शाका १८८५	सर्वाधिकार सुरक्षित	मूल्य १) प्रति

विषय सूची

महारामायण—तृतीय (बन साधन) खण्ड

प्रथम भाग

क्रम संख्या	विषय सूची	पृष्ठ संख्या
पहिला समुल्लास	—जयन्त का राम की परीक्षा करना:—	२४१
दूसरा ,,	राम का अत्रेय ऋषि आदि से मिलना	२४६
तीसरा ,,	अनुसुइया — —	२४८
चौथा ,,	अनुसुइया की कथा --	२५४
पांचवाँ ,,	विराध और मुनियों का समागम	२५८
छठा ,,	राम और अगस्त्य ऋषि —	२६३
सातवाँ ,;	राम लक्ष्मण का संवाद:—	—२६४
आठवाँ ,,	राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)—	२६६
नवां ,,	राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)—	२६६
दसवाँ ,,	राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)-	२७३

द्वितीय भाग

पहला समुल्लास	-सूर्पनखाँ का पंचवटी में आना:—	२७६
दूसरा ,,	-राम, खरदूषण और त्रिसरा के साथ युद्ध	२७६

तृतीय भाग

पहला समुल्लास	--	२८२
दूसरा ,,	-राम सीता का संवाद-	२८५
तृतीय ,,	-सोने का हिरन-	२८६
चौथा ,,	सीता हरण—	२८६
पाँचवां ,,	गिद्धराज जटायु—	२६२

चौथा भाग

पहला समुल्लास	—राम को सीता के वियोग का दुःख—	२६४
दूसरा ,,	शबरी भीलनी से मिलाप —	२६७
तीसरा ,,	बसंत ऋतु और राम का विरह	३ ३

पांचवाँ भाग

पहला समुल्लास—	नारद—	३०७
दूसरा ,,	नारद की कथा:—	३११

ओ३म् स्वः

महारामायण

तृतीय (बन-साधन) खण्ड

ओ३म् स्वः

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

जयन्त का राम की परीक्षा करना

संस्कृत भाषा में 'वन' शब्द का अर्थ है सहायता करना, पूजना, थाह लेना, सेवा करना, व्यौहार और व्यौपार करना।

राम बन को किस अभिप्राय से जारहे हैं? बन जंगल को कहते हैं। अब उनके चरित्र में तुम देखो कि राम इस मंतव्य से बन को जारहे हैं या आज कल के दिखाने वाले साधुओं के समान अपना समय आलस्य और मूढ़ता में बिताने के लिये! तुम चाहो तो संस्कृत कोषों को देख कर अपना

संतोष कर सक्ते हो और फिर साथ ही उनके कर्म, कर्त्तव्य, बचन और कथन पर भी दृष्टि रक्खो। तब आप ही समझ जाओगे कि सच्चे मनुष्य का जीवन काम के निमित्त बना है और राम का कर्तव्य जगत में सबसे उच्चतर उदाहरण तुम्हें दिखाता है।

राम बन को जारहे हैं। चित्रकूट के मानसिक चित्रों के चरित्रों को देख लिया। अब उनको उन का अभ्यास करना है।

बिन साधन साधू नहीं, बिन साधन न भजन।
सत संगत के पीछे होवै, साधन और जतन ॥१॥

साध साध के साध ले, साधन के सब काम।
साधन में अनुभव रहे, साधन में विश्राम ॥२॥

साधू जो साधन करे, बिन साधन नहीं साध।
जो कोई साधन करे, उसका मता अगाध ॥३॥

साधन करने वालों की परीक्षा होती है। यह प्राकृतिक नियम है। जब कोई साधन में लगता है तब प्रकृति की दिव्य शक्तियाँ उसकी जाँच परताल को आती हैं। उनसे घबराना नहीं चाहिये। यह महा आवश्यक है। यह साधन प्रकृति का पहला नियम है और उसी को तप कहते हैं। तुमको बता दिया गया है कि सत जीवन है और उस सत का दूसरा चरण तप है। उसके पश्चात् धीरे धीरे व्यौहार की बारी आती है। ऋषियों ने उसकी सात भूमिकायें ठहराई हैं जिनका चित्र नीचे दिया जाता है :—

सीधा चित्र		उलटा चित्र
१ ओ३म् सत्यम्	१ सत	१ ओ३म् भूः
२ ओ३म् तपः	२ तप	२ ओ३म् भुवः
३ ओ३म् जनः	३ जन	३ ओ३म् स्वः
४ ओ३म् महः	४ मह	४ ओ३म् महः
५ ओ३म् स्वः	५ स्वः	५ ओ३म् जनः
६ ओ३म् भुवः	६ भुवः	६ ओ३म् तपः
७ ओ३म् भूः	७ भूः	७ ओ३म् सत्यम्

यह साधन की सात भूमिकाएँ हैं। इनको तुम काण्ड कहो खण्ड कहो या मानस चरित रामायण के मान-सरोवर के सप्त सोपान कहो। शब्दों में अड़ना निष्फल है।

आरम्भ खंड़ साधन की पहिली सीढ़ी है, अवधखंड दूसरी और यह बनखंड तीसरी सीढ़ी है। आगे औरों का वर्णन आयेगा।

राम ने किस साधन को चित दिया, यह रहस्य तुम्हें बताना है। बताने को तो हम पहिले ही से तुम्हें बताते चले आरहे हैं, तुम न समझो तो हम क्या करें। हम कोई बात छिपाते नहीं। हाँ! अधिकार और संस्कार की बात है। अब फिर बताते हैं। साधना की जड़ और साधना का मूल कारण सीता सती है। उसी के साधन से जीवन का आरम्भ होता है और अन्त तक उसीका उद्योग किया जाता है।

जब नहीं सत्ता तो सत का ज्ञान क्या।
जब न सत्ता हो तो फिर अनुमान क्या॥
सत का निर्णय है उसीके आसरे।
जब नहीं यह तुम परे हो या वरे॥

ओ३म् पद का ज्ञान देती है उमा।
राम पद का ज्ञान देती है उमा॥
यह सहायक है तो सब कुछ साथ है।
जब नहीं है फिर कहो क्या हाथ है॥
सत के सत्ता रहती है आधार पर।
धर है यह और समझना उसको अधर॥

जनक ने हल चलाया। हल जोतने से सीता (लकीर) प्रकट हुई। राम ने विश्वामित्र (जग-प्रेम) के सहारे भ्रूमध्य के अन्तर्गत शिव (कल्याणरूप) का धनुष तोड़ा, सीता से विवाह हुआ और यह सीता दशरथ के घर (शरीर में) आई।

यह सीता (लकीर) शुषुम्ना नाड़ी है जो ईड़ा और पिंगला के बीच में है और राम उसी के साधने, संवारने, सिंगारने के लिये बन में आये। वन का अर्थ तुमको बता दिया गया है। साधन उसी शुषुम्ना नाड़ी में केवल उसी शुषुम्ना का किया जाता है। यह मूलाधार में कुण्डल मारकर बैठी हुई कुण्डलनी शक्ति है जो साधने करने से उभर कर और उठ कर आज्ञा चक्र (भ्रूमध्य) के उपर आकर सहस्रार तक पहुँचा देती है और तब स्वरूप का सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है।

अब कथा प्रसंग की ओर चित्त दो।

राम सीता के साथ स्फटिक शिला पर बैठे हुए थे। अनेक प्रकार के फूलों का आभूषण बनाया। सीता के अंग अंग को संवारा, सिंगारा और सजाया और उसकी सुन्दरता की छवि को देखकर समाधिस्थ होगये, मूर्छा आगई, बेसुध होगये, और लेट गये। सीता ने उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। गर्मी थी, धूप चटकी हुई थी और यह पत्तों का पंखा झलने लगी।

लक्ष्मण नहीं थे। जंगल से फल-फूल पत्ते लेने गये हुए

थे। सीता अकेली थी। इन्द्र के लड़के जयन्त ने देखा, सोचा- "यह राम ब्रह्म का अवतार कहलाते हैं और देवता और पृथ्वी की रक्षा के लिये प्रकट हुये हैं। सीता उनकी शक्ति है। अकेली है। मैं चल कर इनकी परीक्षा करूं कि यह पराक्रमी और पुरुषार्थी हैं या यों ही देवता बिना समझे-बूझे उनके अभिमानी हो रहे हैं।" जयन्त ने कौवे का भेष बनाया। सीता के सन्निकट आया और सीता की छाती में चोंच मारकर भागने ही को था कि लहू की धार राम के मुँह पर पड़ी। जयन्त ने अपनी ठोंठ से सीता को घायल कर दिया था। राम की आँख खुल गई थी। देखा कि सती की छाती लहूलुहान हो रही है। समझ गये कि कौवे ने यह कुटिलता की है। एक सींक के बाण को धनुष में लगा कर मारा और वह उनकी ब्रह्म शक्ति के बल से उड़ा। आगे आगे जयन्त और पीछे पीछे यह ब्रह्म-बाण! वह डरा। इधर गया उधर गया, कहीं भी बचाव का उसे ठिकाना नहीं मिला।

अपने निज रूप में बाप के पास सहायता माँगने गया। इन्द्र ने कहा जा दूर हो। मैं राम के बिरोधी की रक्षा नहीं कर सकता। चींटी में क्या सामर्थ्य है जो समुद्र की थाह ले सके। जा, जैसा किया वैसा तेरे आगे आया। वह ब्रह्मा और शिव के पास भी गया। किसी ने न आसन दिया न पास बिठाया। बात तक नहीं पूछी। राम के विद्रोही की यही दशा होती है। माँ-बाप के मारने वाला कब सुखी हुआ है। उसके लिये तो पानी भी आग के समान जलन उत्पन्न करता है। वैतरणी नदी तक उसके डुबा देने का यत्न करने लग जाती है। नारद ने उसकी दशा देखी। दया आई। बोले—अभी राम के पास जा। उनकी शरण ले। वह दयालु हैं। शरण में आये हुये की

संभाल करते हैं। यह राम के पास पहुँचा। चरणों में गिरा। त्राहि माम ! त्राहि माम ! बचाइये मैंने मूर्खता की। अपनी करनी का फल पा चुका। आपके अतिरिक्त मेरा रक्षक जगत में कोई भी नहीं है। राम ने कहा कि यह ब्रह्म सर अपना काम किये बिना नहीं रहता और उन्होंने उसकी एक आँख फोड़कर जीवन प्रदान किया और अभय कर दिया।

नोटः—जयंत संस्कृत शब्द "जी" (विजय करने और जीतने) से बना है। साधन अवस्था में मन की यह विजय करने वाली शक्ति अहंकार रूप में प्रगट हो जाती है। इसे एकाक्षी बनाना पड़ता है, जिस से यह दो न देखे और एकाग्र करदे। योग की परिभाषा में इसे प्रमाद कहते हैं। यह बड़ा अवगुण समझा जाता है।

दूसरा समुल्लास

राम का अत्रेय ऋषि आदि से मिलना।

एक जगह ठहरना उचित नहीं था। जीवन का आदर्श बढ़ना और सोचना है। इसी बढ़ने और सोचने का नाम ब्रह्म (संस्कृत ब्र-बढ़ना, और मनन सोचना) है। यही प्राणी जीवों का आदर्श है। जो बढ़ते और सोचते हैं उनको जीवन का भोग प्राप्त रहता है। यह सार है। सार में दो बातें मुख्य हैं एक तत् दूसरा त्वम। तत् (वह) और त्वम (तू) है। इन दोनों को तत्व कहते हैं। ब्रह्म तत्व तत और जीव तत्व त्वम है। वह और तू (तत और त्वम) यही तत्व है। इसके अतिरिक्त और कुछ तत्व नहीं है। जीव के सामने ब्रह्म (बढ़ने और सोचने) का आदर्श दृष्टि के सामने रहता है।

इस बढ़ने और सोचने का सहायक आहार होता है। बिना आहार के बढ़ना और सोचना एक प्रकार से असम्भव भी है।

मनुष्य की जीवन रक्षा के लिये आहार का चिन्तन हुआ करता हैं।

चित्रकूट में राम के सहायक किरात कोल हैं। यह हर जगह नहीं मिलते। अब राम ने अत्रेय ऋषी की खोज की। दोनों भाई सीता के साथ चल खड़े हुये और ऋषी के स्थान पर पहुँचे। इनको देख कर वह बहुत प्रसन्न हुये। उठे। राम ने नमस्कार किया। दोनों गले मिले। इस ऋषि की धर्म-पत्नी का नाम अनुसुईया था। वह सीता से मिली।

ऋषि ने राम की स्तुति की:—

राम ! तुम इस जगत के आधार हो।
तुम हो तिरलोकी में सबके सार हो ॥ १
धर्म हो और धर्म के लक्षण हो तुम।
अर्थ हो और अर्थ के जीवन हो तुम ॥ २
मोक्ष हो तुम को कोई बंधन नहीं।
काम हो तुम को कोई साधन नहीं ॥ ३
सब के घट के बासी सब में व्याप्त तुम।
भक्त जन को रात दिन हो प्राप्त तुम ॥ ४
तुमको कुछ दुर्लभ नहीं, दुर्लभ हो आप।
है तुम्हारी माया सब को तोल माप ॥ ५
ईश हो जगदीश जग नायक हो तुम।
शूर और वीरों के धनु सायक हो तुम ॥ ६
आगये इस जगत के कल्याण को।
ब्रह्म को दिखलाया आकर आन को ॥ ७
मंगलम मंगलअयन् मंगल ध्वजम्।
मंगलम् मंगल सदन मगल वयम् ॥ ८
सेत हो संसार सागर के लिये।
इष्ट पद पामर के नागर के लिये ॥ ९

भक्ति मुक्ति योग युक्ती आप तुम ।
रिद्धि सिद्धि निद्धि शक्ति आप तुम ॥ १०
तुम हो दाता तुम विधाता तुम दयाल ।
तुम हो रक्षक तुम सहायक तुम कृपाल ॥ ११
भक्ति दीजै नाम की नामी हों हम ।
सेवा पूजा करके शुभ कामी हों हम ॥ १२

राम अत्रेय से मिलकर बहुत प्रसन्न हुये ।

तीसरा समुल्लास

अनुसुइया

अत्रेय की स्त्री का नाम अनुसुइया था । सीता उसके पांव पड़ी । उसने छाती से लगाया, न्हिलाया धुलाया, बालों में कंघा किया और कपड़े पहना कर सजाया, सिंगारा और उसके सुन्दर रूप को देखकर मोहित हो गई ।

सीता ने कहा—"माई ! मुझे कुछ उपदेश कर । तू बड़ी बूढ़ी है । संसार के सुख दुख का ज्ञान रखती है ।"

अनुसुइया सरल स्वभाव वाली थी । उसने निष्कपट हो कर उससे कहा—"सीता ! तू बड़ी भाग्यवती, सयानी और बुद्धिमती है । तुमको मैं क्या कहूं । तुम सब कुछ जानती हो । तुम्हारा जन्म नगर में हुआ जहाँ सभ्यता है । मैं बन की रहने वाली जंगली स्त्री हूँ । तुमने उपदेश की इच्छा की मेरा सम्मान किया । इसलिये तुम्हारी इच्छानुसार मैं मुँह खोलती हूं ।"

"स्त्री जाति का केवल एक धर्म है और वह पति की सेवा है । पति चाहे अयोग्य हो, निर्बल हो, काम काज न कर सकता हो, स्त्री को चाहिये उसका कभी अपमान न करे, नहीं तो वह नर्कगामी होगी । ऐ सीता ! पुरुष उसे कहते हैं जो पुर (शरीर, देह और काया) में रहे । संस्कृत-पुर (शरीर) और

षस–(रहना) और स्त्री उसे कहते हैं जो स्त्री (परदा) हो और पुरुष के औगुन को ढके। उसके यश को फैलावे। उसकी संतति को बढ़ावे। उसे आहार दे। उसे वस्त्र पहनाये। इस कर्म से वह उसकी अन्नदाता हो। उसे बल और पौरुष दे, अच्छी-अच्छी मीठी-मीठी बातें करके उसके साहस और पराक्रम की वृद्धि करे और उसके लिये बलदाता बने। वह उसे बुद्धि दे, सुमार्ग दिखावे, बुद्धिमान बनाये और वह अपने पुरुष के लिये बुद्धि दाता समझी जाय।

यह अच्छी स्त्रियों के तीन धर्म हैं। पुरुष को आहार या अन्न देकर बलवान करने से वह लक्ष्मी, बुद्धि देने से वह सरस्वती और पराक्रमी, तेजस्वी और पुरुषार्थी बनाने से वह पार्वती कहलाती है। एक स्त्री के यह तीन रूप हैं जो उसके तीन प्रकार के कर्मों की दृष्टि से हैं।

"संसार में चार प्रकार की पतिव्रत धारण करने वाली स्त्रियाँ होती हैं। पहली उत्तम, जिसके लिये संसार में एक पति है और इसके अतिरिक्त और सब जीव मात्र हैं, पति कोई भी नहीं है। दूसरी मध्यम, जो पति को पति समझती है और दूसरे पुरुष उसके लिये भाई, चाचा ताऊ के समान हैं। तीसरी कनिष्ट स्त्री वह है जो पति को तो पति समझती है लेकिन और पुरुषों को भी पुरुष जानती हैं। वह केवल भय वश और लज्जा वश स्त्री धर्म का पालन करती है। चौथी महा नीच स्त्री वह है जो ब्याही तो गई, समाज के सामने पति का व्रत धारण तो कर लिया लेकिन उसने पति को अपना इष्ट धारण नहीं किया।"

"ऐ सीता ! स्त्री का कर्त्तव्य मन, बचन, कर्म से पति की सेवा है। जो जीते जी इस धर्म का निर्वाह और पालन करती है उसे और कुछ करने धरने की आवश्यकता नहीं है। उसे

लोक में यश और परलोक में महा आनन्द है। उसका दोनं लोकों में यश और सन्मान है।"

पतीव्रता को सुख बना, पति में प्रेम प्रभाव।
सुख सुन्दर की सुन्दरी, सुमुखि, सुचाल, स्वभाव॥

पतिव्रता मैली भली, काली, कुचल, कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारूँ कोटि स्वरूप॥

पतिव्रता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियों में यों दिपे, ज्यों रवि शशि की जोत॥

पतिव्रता के एक पति, सहित विचार विवेक।
भीतर बाहर सम दशा, वही एक की एक॥

"ऐ सीता! पति सेवा योग्य है, पति सेवा अमूल्य भक्ति है और पति सेवा ही सच्चा ज्ञान है। जिसे यह प्राप्त है वह सौभाग्यवती स्त्री है और जिसे यह प्राप्त नहीं उस से अभागी स्त्री संसार में कोई नहीं है"।

सीता ने पूछा—"माई! स्त्री किस प्रकार का भोजन खिलाकर पति को प्रसन्न करे?"

सरल स्वभाव वाली सीता के इस प्रश्न पर भोली भाली अनुसुइया हँसी। "आहार इस प्रकार का हो जिससे हार य थकावट या निर्बलता का रोग इस शरीर में न आवे। संस्कृत धातु 'आ' (जाना, दूर होना, कम होना) और हार (थकावट) आहार सूक्ष्म, रुचिदायक और पचने वाला हो। न कम हो न अधिक। सीधा साधा भोजन! और स्त्री अपने मन बचन और कर्म को प्रेम मय बना कर उसे पकाये। पकाते समय पकाने वाले के मन में द्वेष और ईर्ष्या नाम के लिये भी न हो, क्यों कि ऐ देवी! जैसा आहार पेट के भीतर जाता है

खाने वाले का मन भी उसी प्रकार का बनता है। भोजन में चिकनाई का अंश थोड़ा हो। अधिक होगा तो उस से पेट में हानि कारक कीड़े उत्पन्न होंगे और शरीर रोगी हो जायगा। चिकने चुपड़े भोजन को आहार नहीं बल्कि सहार (हारने वाला, हार के समान) समझना चाहिये। खाने का समय दिन है। सूर्य की किरणें पाचन शक्ति को उत्तेजन करती हैं। रात का भोजन जठराग्नि को मंद कर देता है। षट रस भोजन हो तो क्या कहना है। नहीं तो सीधा सादा! और स्त्री सामने बैठ कर पती को भोजन करावे। भोजन, ध्यान, स्वाध्याय एकान्त में हो तो अच्छा है। दूसरों की दृष्टि पड़ने से खाने में उनके संस्कार या दृष्टि द्वारा रोग के कीड़े बहुत जल्द पड़ जाते हैं। माता, मोर, कुत्ता और प्रेम करने वाली स्त्री की दृष्टि आहार को आहार बना देती है और खाने वाला रोगी कम होता है। आहार, व्यौहार, निद्रा और साधन सबका युक्ति के आधीन रखना लाभदायक होता है।"

सीता—"माई! हम लोग बन में हैं। षटरस भोजन का प्रबन्ध कठिन है।"

अनुसुइया—"कुछ कठिन नहीं है। बन में सब प्रकार के कंद मूल, फल फूल और पत्ते मिलते हैं। सब रसों का सेवन करना लाभकारी और हितकारी होता है और जिस रस की शरीर में न्यूनता रहती है, उसकी पूर्त्ति होती है। षट्रस यह हैं—(१) मीठा, (२) सलौना, (३) कसैला, (४) चरपरा, (५) कड़ुआ और (६) निरस। बन में इनकी कमी नहीं है। आहार भी छः प्रकार से किया जाता है:—(१) पीना, (२) चबाना, (३) चूसना, (४) चूस कर या तो पेट के भीतर पहुँचाना या रस लेकर सीठी को बाहर थूक देना, (५) चखना और (६) चाटना

पाक विद्या भी छः प्रकार की होती हैं, जिसे घर की स्त्रियाँ जो भोजन बनाती हैं जानती हैं।"

सीता—"यह आहार केवल छः प्रकार का ही क्यों होता है ? मैं तो हज़ारों प्रकार का बना सकती हूँ।"

अनुसुइया हँसी—"देवी ! तू आहार का विषय छोड़कर ज्ञान और सृष्टि क्रम प्रकरण की भूमिका में आ गई। हज़ारों क्या तू चाहे तो लाखों करोड़ों और अनगिनत पकवान बना सकती है। यह सब मिलावट का प्रसंग है। सामिग्री के अधिक और न्यून करके मिला देने से स्त्री चाहे तो नाना प्रकार के भोजन बना सकती है। यह कोई कठिन बात नहीं है।"

मैं ने छः प्रकार के भोजन का वर्णन इसलिये किया कि सृष्टि में सात तत्व हैं। पहिला तत्व आधार मात्र है। शेष छः में छः प्रकार की धारें रहती हैं और इन धारों से सृष्टिक्रम का प्रबन्ध रहता है और यह आहार का विषय भी उसके अन्तरगत है।"

सीता—"मैं इन बातों की समझ नहीं रखती। अधिकारी समझती हो तो बतादो, नहीं समझती तो जाने दो।"

अनुसुइया हँसी—"सीता और अधिकारी का प्रश्न ! देवी ! तू जगत की माता है और आदि शक्ति है। सारा जगत तेरे आधार पर है। मेरे पति अत्रेय ऋषि जी ने एक दिन मुझ से कहा कि सीता (लकीर) सुषुम्ना नाड़ी है, जिसके आधार पर यह जगत है और सारे लोक लोकान्तर इसी में पिरोये हुये हैं। इसी नाड़ी के अन्तरगत वह छः तत्व, छः रस

आदि रहते हैं। उन सातों तत्वों का वर्णन ऋषियों ने इस प्रकार किया है :—

यह छः रस उन्हीं के आधार पर हैं।"

सीता—"माई ! तूने मेरा बड़ा उपकार किया। मुझे थोड़े में इस सृष्टि क्रम के नियम को समझा दिया। मैं कृत्य कृत्य हो गई। अब यह अभिलाषा है कि जिस प्रकार तुम अपने पति का पालन पोषण और आहार व्यौहार करती हो, सुनादो ताकि उसका संक्षिप्त वर्णन सुनकर सुशिक्षित हो जाऊँ और लाभ उठाऊँ।"

अनुसुइया खिलखिलाकर हँस पड़ी। "देवी तू जान बूझ कर यह प्रश्न करती है। अच्छा ! तेरी इच्छा पूरण हो। कान लगाकर मेरा वृतान्त सुन" :—

चौथा समुल्लास

अनुसुइया की कथा

अनुसुइया बोली—"ऐ सीता ! तू सती है। तेरी रुचि सत की ओर है। तू सीता है और सुषुम्ना नाड़ी का संबंध सत तत्व से है. इसलिये मैं तुझे सीता कहती हूं। जगत में तू इसी सीता सती के नाम से प्रसिद्ध होगी। मैं अत्रेय ऋषि की धर्म पत्नि हूँ। कुरदम मुनि की पुत्री हूँ। अत्रेय शब्द संस्कृत धातु 'आव' (खाने) से निकला है। मेरे पति ने आहार के नियमानुकूल रखने ही को सिद्धि शक्तिमान रक्खा है और वह सच्ची बात है। जो मनुष्य युक्ति के साथ आहार करता है वह इसी आहार के प्रताप से सिद्ध हो जाता है। अन्न (नाज, संस्कृत आव-खाना) औषधी है। सिद्धि शक्ति की प्राप्ती कई प्रकार से होती है। मंत्र से, योग से, नाम से, औषधि से, तप से और चित या बुद्धि के एकाग्र करने से। इस प्रकार अन्नमय जगत में जो युक्ति के साथ अन्न खाते हैं, वह भी सिद्ध पुरुष हो जाते हैं। मेरा नाम अनुसुइया यों पड़ा कि मैं इस ऋषी की वृती हूं और उनके खाने पीने के प्रबन्ध में लगी रहती हूँ और किसी ओर मेरा चित्त डाँवाडोल नहीं होता।

मेरे पति को तप करने की इच्छा हुई। वह गुफा में बन्द हो गये। मेरा काम अन्न जल लाने का था। मैं जंगल से कंद मूल खोद लाती और पहाड़ के झरनों से पानी भर लाती और समय पर पति को आहार करा देती। देश में अकाल पड़ गया, पानी सूख गया और घास फूँस सब झुलस कर जल गये। अन्न जल दोनों का मिलना कठिन हो गया। मैं दूर दूर पहाड़ों में खोजने जाती और बड़ी कठिनाई से यह सेवा करती थी। फिर तो यह दशा हो गई कि चाहे मैं कितनी ही

दूर नाती कहीं अन्न जल का पता न लगता था। ऋषि तो गुफा में रहते थे। वह क्या जानते थे कि देश में अकाल आया हुआ है और मैंने उन्हें सूचित करना उचित भी नहीं समझा।

एक दिन मैं जड़ी बूटी और पानी की खोज में दस बारह मील तक गई। बड़ा परिश्रम किया। जड़ी तो कुछ हाथ लग गई। पानी नहीं मिला। एक जगह तोंबा रख कर रोने लगी। एक ऋषि आया। मेरे रूप को देख कर मोहित हो गया क्योंकि लोग मुझे बहुत सुन्दर समझते हैं। मैंने उसकी ओर से आँख फेर ली। कहने लगा–"जहाँ तेरे पति की गुफा है उसी के नीचे पानी भरा है। तू यदि पतिव्रता स्त्री है तो उस पृथ्वी को खोद, पानी निकल आयेगा।" मैं जानती थी कि मैं सच्ची पतिव्रता स्त्री हूँ। उसकी बात का विश्वास किया। कुटी की ओर लौटी। पृथ्वी को खोदा। पानी का सोता निकला और धार बह निकली और कुछ दिनों पीछे जब ऋषि का अनुष्ठान समय बीत गया और उन्होंने जाना कि मैं बड़े प्रयत्न और परिश्रम से उनके खाने पीने का प्रबन्ध करती थी तो उन्हें शोक हुआ। लेकिन नदी के प्रवाह को देखकर बहुत प्रसन्न हो गये और उसे अपने तप का परिणाम समझने लगे। अकाल जाता रहा, पानी बरसा, खेती हरी भरी होगई और वन, पहाड़ पर्वतों पर हरियाली दौड़ गई।

उस ऋषि ने जो मेरी परीक्षा करने आया था सारे आकाश मंडल की देवियों को जा जाकर सूचित किया कि जगत में केवल एक पतिव्रता स्त्री है और वह अनुसुइया है। इन देवियों को डाह उत्पन्न हुई। वह कहने लगीं कि "हम भी पतिव्रता स्त्रियां हैं।" वह पतिव्रता तो हैं या होंगी, लेकिन सम्भव है कि उन्हें सच्चा ज्ञान न हो। नारद ने फौलाद के चने बनाये और इन देवियों से जाकर कहा कि "जो कोई इन्हें

गला दे वह पतिव्रता और जो न गला सके वह कुलिटा है।" देवियों ने चाहा कि वह चने गल जाँय लेकिन वह न गल सके। तब नारद मेरे पास आये। मुझ से भी वही बात कही। मैं बोली, "यह कौनसी कठिन बात है। मेरे पति के कमण्डल में जो जठराग्नि रहती है वह सबको भस्म कर सकती है।" मैंने उनके चनों पर कमण्डल का जल छिड़क दिया। वह गल गये। नारद को आश्चर्य हुआ। वह देवियों के पास गले हुये चने ले गये। उन्हें दिखाया। सबने उनको चबाया। अब तो उन्हें और भी डाह हुई। ब्रह्मा, विष्णु, महेश संसार के त्रिदेवों को मेरे पतिव्रत भंग करने के लिये उकसाया। वह मेरे पति की कुटी में आये। मैं अकेली थी। अतिथि सम्मान के नियमानुसार उनको भोजन कराना चाहा। वह बोले— "नंगी होकर खाना परसो तो हम स्वीकार करेंगे।" उनकी बात बच्चों जैसी थी। मैंने स्वीकार कर लिया। पति के कमण्डल का जल उन पर छिड़क दिया और वह कुटी में रहने और बाल लीला करने लगे। देवियां घबराईं और मेरे पास आईं। मैंने उन्हें दुखी देखकर फिर कमण्डल का जल छिड़का। वह पुरुषत्व बुद्धि को प्राप्त हो गये और उन्होंने प्रसन्न होकर तीन पुत्रों का वरदान दिया। इससे पहले मैं पुत्रवती नहीं थी। मेरे यह लड़के चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा कहलाते हैं।

सीता हंसी, "तुम्हारे पति के कमण्डल में आश्चर्यजनक प्रभाव है।"

अनुसुइया बोली—"ऐ सीता! यह जगत मनोराज है। यहां जो कुछ है सब मानसिक है। अत्रेय ऋषि का कमण्डल अब भी है। उसमें मनन करने का प्रभावशाली जल भरा रहता है। जिसका मन निश्चल है, वह जिस भाव से विचार का जल किसी पर छिड़क देगा, वह उसके वशीभूत हो

जायगा। ऐ सती ! इस मन की शक्ति से आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु उत्पन्न होते हैं। यह सब में श्रेष्ठ और प्रबल हैं। मनुष्य समझता है कि आकाश के अवकाश में हम निवास करते हैं लेकिन यह उसकी समझ में नहीं आता कि इन तत्वों की उत्पति मन ही से है। मानसिक जगत का राज्य यह मन ही है। तू राम के साथ बन में आई है। यहाँ इस मन का खेल तेरी समझ में आयेगा।

मन गोविन्द मन गोरखा, मन ही औगढ़ होय।
जो मन राखे जतन से, आप ही कर्त्ता होय॥
मन पानी मन पारथो, मन वायु मन आग।
जैसो मन से ऊपजे, तैसे ही पावे भाग॥
मन अज्ञान मूढ़ है, मन है चतुर सुजान।
मन चंचल मन निश्चला, मन को सब कुछ जान॥
मन मत सब संसार है, गुरू मत कोई साध।
जो पावे गुरू गम गती, उसका मता अगाध॥
कबहूं मन गगना चढ़े, कबहुँ गिरे पताल।
कबहूँ मन उनमुन लगे, कबहू जावे चाल॥

ऐ सीता ! पति के प्रेम में मन को दृढ़ कर रक्खो और तब तू इस प्रसंग को समझेगी। योगी मन की योगाग्नि से जिसे चाहे भस्म कर सकता है। फौलाद का चना क्या होता है ! ध्यानी अपने मानसिक ध्यान से ईश्वर तक को वशीभूत कर सकता है। देवी देवता उसके आगे क्या होते हैं ! हां ! यह बात साधारण मनुष्य नहीं समझ सकते।

सीता अनुसुइया के पाव पड़ी। राम ने भी ऋषि के चरण पकड़ कर विदा माँगी। ऋषि ने कहा "धन्य तुम ! धन्य तुम्हारी लीला ! अब तो ऐसा हो कि तुम मेरे मन में निवास करो और अपनी दृढ़ भक्ति प्रदान करो। मैं कैसे कहूं कि तुम जाओ।

यों तुम जगत पति हो।"

यह कर ऋषि राम के चरणों में गिरे। राम ने उन्हें उठा कर छाती से लगाया और बन यात्रा को चले।

नोटः—इससे पहले समुल्लास में प्रमाद के वशीभूत करने का रहस्य है। इसमें आहार के युक्त नियम पालन का भेद है।

पांचवाँ समुल्लास

विराध और मुनियों का समागम

प्रकृति में बाधक और सहायक दोनों प्रकार की वृतियां काम करती हैं। एक रुकावट का कारण होती है, दूसरी वृद्धि के मार्ग की तरफ ढकेलती है। एक को दबाना और दूसरी को उभारना होता है और फिर दोनों अपने अपने ढंग पर काम देने लग जाती हैं। यह कई प्रकार की होती हैं, लेकिन द्वन्द जगत में इनके दो ही रूप माने जाते हैं।

असुर विरोधी वृतियाँ होती हैं और सुर सहायक वृतियां होती हैं। विरोधी वृति विराध कहलाती है और सहायक वृति के नाम ऋषि और मुनि हैं। ऋषि वह है जो केवल मंत्र दृष्टा होते हैं। इनका धर्म देख-भाल है और मुनि वह हैं जो चुप चाप संभाल में लगे रहते हैं। सारा जगत इन दोनों प्रकार की वृतियों से भरा हुआ है। काम करने वाले विरोध से नहीं घबराते। यह न हो तो क्रियकारता की प्राप्ति असम्भव हो जाय।

राम, सीता और लक्ष्मण ने पग बढ़ाया। देखा आगे की तरफ से विराध राक्षस के रूप में हाहाकार करता हुआ भयानक बना हुआ डराने आ रहा है। राम ने ब्रह्मबाण(ओ३म् विचा का ध्यान) उठाया और ऐसा तीर मारा कि रास्ते ही में घायल होकर गिरा और तड़पने लगा। राम को दया आई। उससे

कहा—"तू मेरे धाम को चला जा। वहाँ तेरी दशा बदल जायगी।" और उसने अपना प्राण त्याग दिया।

यह आगे बढ़े और सरभंग मुनि के आश्रम में पहुँचे। मुनि ने देखा। प्रसन्न हुये। बोले—"भगवन! मैं शिवजी (कल्याण) के धाम को जा रहा था। सुना, आप आरहे हैं। आप इस कल्याण सागर (शिव के मान सरोवर) के हंस हैं। दर्शन मिला और यह दर्शन मेरे लिये कल्याणकारी हो गया। मैं साधन में हूं। अब ऐसी कृपा कीजिये कि जब तक मैं इस स्थूल शरीर का त्याग न करलूं तब तक आपको देखते देखते सूक्ष्म अवस्था में लय हो रहूँ और मेरा सरभंगपना (संस्कृत 'सर'-चलना और 'भंग'-दरार, टूटना) सफल हो जाय।

राम सीता और लक्ष्मण वहाँ बैठ गये। मुनि ने योगाग्नि से अपने तन को जला दिया। राख की ढेरी बन गई। देवताओं ने स्तुति गाई:—

जय राम करुणासिन्ध, दीन दयाल परमानन्द घन।
जय प्रणतपाल कृपाल, अद्भुत रमापति करुणा अयन॥
दर्श पर्श विचार सेवा, ध्यान जप तप में जती।
देखा जो रूप अनूप, निर्गुण सगुण पाई सद्गती॥

नोट:—यह सरभंग साधन अवस्था की वह वृति है जो ध्यान करते समय टूट जाती है। एक भाव एक समान, एक दशा और एक अंश में नहीं रहता। ध्यान इस प्रकार हो कि बीच-बीच में उसका तार न टूटे। तब यह बहुत सुखदाई प्रतीत होता है।

राम ने उसे सुलझा लिया। इसका यह अलंकार है। इसके नाम पर विचार करने से यह बात समझ में आजायगी।

राम आगे की ओर बढ़े। बहुत से ऋषि मुनि दर्शन के निमित्त आये। रास्ते में हड्डियों का ढेर पड़ा हुआ था।

आपने उनसे पूछा, "यह क्या है ?" उत्तर मिला, "भगवन् आप जान बूझकर क्यों पूछते हैं ? यह ऋषि मुनि आदि ठठरियाँ हैं जिन्हें निश्चरों (रात की चर्य्या करने वालों) खा लिया। उन्हें दिनचरों (दिन की चर्य्या करने वालों) सहायता नहीं मिली। यह मरकर मिट्टी में मिल गये।" रा की आँखों में आँसू भर आये। उन्हें ढाढस देकर कहा—' इन सारे निशाचरों को मार गिराऊँगा। तुम धीरज धरो।'

नोटः—निश्चर महा तामसी होते हैं। उनकी वृतियाँ त तामसी होती हैं। दिनचरों की वृतियां सात्विकी होती हैं निश्चर और दिनचर का यह भेद है।

अनेक ऋषियों और मुनियों के आश्रम में जा जाक राम ने अपने दर्शन से उन्हें सुखी किया। फिर अगस्त्य ऋषि के आश्रम में आये।

अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण, (सु = अच्छा, तीक्ष्ण=तेज ने सुना कि राम आये हैं, वह सर के बल दौड़ा। चरणों आकर गिरा:—

किसको थी आशा अयोध्या, त्याग बन में आयेंगे।
राम इस मधुबन को आकर, शोभावान करायेंगे॥
तारा चमका भाग का, दर्शन मिला आनन्द हुआ।
धन्य महिमा आपकी हैं, काम सहजे ही बना॥
मुझ में भक्ती है कहां, मुझ में कहां है कर्म ज्ञान।
योग युक्ती से न परिचित, है न मन में गुरु का ध्यान॥
मुझ में शक्ती है कहां, मुझ में समरथ की गम कहां।
मोक्ष काम और धर्म की, मुझ में हैं अर्थ की गम कहाँ॥
भक्ति दीजे पावनी सुखदायनी, सेवक विचार।
आपका सुमिरन सदा हो, आप के चरणों का प्यार॥

सुतीक्ष्ण प्रेम में मग्न होकर कभी नाचता था, कभी गा

था। फिर आंख, कान, होंठ तीनों बंद हो गये। न कुछ दिखाई देता था न सुनाई देता था और न उसके मुँह से बाणी निकलती थी। यह क्या हुआ? वह अचेत होकर राम के आगे बावला बन कर धम से गिर पड़ा। यह क्या दशा थी? उन्मत्त तो वह था नहीं। न उसने दिखावे का सांग भरा था। बात जो हुई वह यह थी। ओ३म भूर भुवः स्वः।

नहीं पृथ्वी का रहा ध्यान उस में।
नहीं नभ का था अनुमान उसमें॥
कहाँ अन्तरिक्ष कहां जगत माया।
किधर धूप थी और किधर उसकी छाया॥
न तन की बदन की न मन की थी सुध बुध।
न श्रवण मनन और कथन की थी सुध बुध॥

राम मुनि को इस दशा में देखकर बहुत सुखी हुये। वह तो अचेत पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। इन्हें दया आई। उसके अंतःकरण के मस्तिष्क में सूरज के समान जगमगाते हुये प्रगट हुये। प्रकाश तेज मय और तीक्ष्ण था। उसके तेज को सहार न सका। घबरा गया। आखें खोल दीं। इधर उधर देखने लगा। यह क्या दशा थी? कोई साधक हो तो इसे समझे। "ओ३म् भूर भुवः स्वः" के पश्चात् जो दशा आती है वह थी और उसे "तत् सवितुर वरेण्यम्" कहते हैं।

पृथ्वी अन्तरिक्ष नभ मंडल, तीनों का नहीं ध्यान रहा।
ओ३म् नाम का जाप था अजपा, नहीं ज्ञान अनुमान रहा॥
ध्यान रहा नित उस सवितुर का, भर्गो देवस्य को धारा।
सवितुर के प्रताप महातम, धी महि निर्मल धारा॥
सवितुर प्रकटा जोति निराली, जोति जोति में जोति की खान।
वह प्रकाश था अगम अनूपा, क्योंकर कोई करे बखान॥

"धी मही धियो भर्गो" घट छाया, "धियो योनः प्रचोदयात"।
यह रहस्य था सुगम सुहेला, संत विना नहीं कोई कहा ॥
आगे पीछे राम की मूरति, हंस वंश का अंश लखा।
देखा सवितुर रुप अनौखा, मन भया शान्त विचित्र महा ॥
यह रहस्य है गुप्त भेद है, बने सुतीक्ष्ण तब जाने।
जान जान पहचान करे कोई, कर पहिचान के तब माने ॥

आँख खुली। उठा। पांव पड़ा।

धन्य लीला आपकी और, धन्य महिमा आपकी।
किससे दूँ पूरण धनी! मैं अधम उपमा आप की ॥
आप हैं निर्गुण सगुण, और आप पूरण काम हैं।
सच्चिदानन्दन् अखंडम्, आप शोभा धाम हैं ॥
मोह माया में फंसे क्या, समझे आपके रूप को।
यह दुखी परजा कहाँ और, कैसे जाने भूप को ॥
अब तो चरणों में पड़ा, चरणों की छाया दीजिये।
अपना किंकर मानकर प्रभु, दास सांचा कीजिये ॥
आपको भूलूँ नहीं, भूलूँ में अपना देह गेह।
आपके ही पद कमल से, मेरा लगे दिन रात नेह ॥

राम ने कहा—"एवमस्तु!"

फिर पूछा—"मैं अगस्त्य ऋषि से मिलना चाहता हूँ। क्या तुम उनका पता दे सकोगे?"

सुतीक्ष्ण—"मैं आप के साथ चलकर उनका निवास स्थान दिखा दूँगा।" राम समझ गये कि इसकी इच्छा साथ रहने की है और उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

नोट :—सु (अच्छा) और तीक्ष्ण (तेज)

छटा समुल्लास

राम और अगस्त्य ऋषि

राम को सुतीक्ष्ण अगस्त्य ऋषि के पास लाया। वहाँ और बहुत से ऋषि थे जो चकोर के समान उनके चन्द्र मुख को देखकर चकित हो गये। राम ने सबको नमस्कार किया। अगस्त्य ऋषि से मिलकर आपने कहा-"मैं जिस मंतव्य से बन को आया हूँ वह आपको विदित है। मुझे उसके विषय में कुछ कहना सुनना नहीं है। अब ऐसा उपाय बताइये कि यह मनोरथ सिद्ध हो।"

अगस्त्य ने उत्तर दिया—"आप सर्वज्ञ हैं। आपकी माया प्रबल है, जिसकी थाह किसी को न आज तक मिली न आगे मिलने की आशा है। आप ज्ञान ध्यान के पूर्ण भंडार हैं। आपको उपाय बताना सूरज को दीपक दिखाना है। आपने यह प्रश्न पूछ कर मेरा सम्मान और सत्कार किया है। यह कोई नई बात नहीं है। आप जिसे चाहो बड़ा बनाओ; जिसे चाहो छोटा बनाओ। मैंने आपके इस वर्तमान स्वरूप में सगुण ब्रह्म का दर्शन किया और कृत्य-कृत्य होगया।

"ऐ राम! इस संसार का यह नियम है कि जिसके मन में जो प्रबल इच्छा होती है प्रकृति आप उसकी सफलता में सहायक होती है और उसकी आवश्यक सामिग्री के इकट्ठा होने का प्रबन्ध आप ही आप होता चला आता है। मन में सच्ची चाह हो और यह उसका रास्ता निकाल देती है। आप दण्डक वन में जाकर 'पंचवटी' नामक स्थान में निवास कीजिये। स्वयं सारा काज सिद्ध होने लगेगा।"

राम उठे, नमस्कार किया और चल खड़े हुये। राह में गृद्धराज को दर्शन देकर सुखी किया और गोदावरी के तट

पर दण्डक वन की पंचवटी में आकर गुफा में फूँस का झोंपड़ा बनाकर रहने लगे। उस तपोवन में जितने ऋषि मुनी रहते थे, उनके दर्शन को आने लगे और उनके निवास करने से वह बन स्वर्ग बन गया।

सातवां समुल्लास

राम लक्ष्मण का संवाद

एक दिन इस पंचवटी की पर्ण कुटी के आगे राम और लक्ष्मण दोनों भाई पत्थर की चट्टान पर बैठे हुए थे। सीता कुटी में थी।

लक्ष्मण ने पूछा—"प्रभो! मुझे आज आज्ञा हो तो मैं आप से कुछ साधारण और असाधारण प्रश्न करूँ और आप मुझे संक्षिप्त रीति से उत्तर देते हुये समझा दीजिए। इस प्रश्नोत्तर का अभिप्राय केवल शंका समाधान और शंका निवारण है। जब मनुष्य के हृदय में शंशय उत्पन्न हो जाते हैं तो उसके मन की शान्ति जाती रहती है और भ्रांति में पड़कर दुखी होता है।"

राम ने कहा—"समय अच्छा है। एकान्त का अवसर है। तुम्हें जो कुछ पूछना हो पूछो। मैं बहुत संक्षिप्त और सूक्ष्म रीति से तुम्हें उत्तर दूँगा और तुम्हारे मन का भ्रम दूर हो जायगा।"

लक्ष्मण—"जीव और ईश्वर में क्या भेद है? और यह माया क्या वस्तु है जिसके भ्रम में पड़ कर जीव चिल्लाता और घबराता है?"

राम—"ईश्वर जगतपति है और जीव उसकी प्रजा है। जो सम्बन्ध किसी राजा को उसकी प्रजा के साथ है वही ईश्वर और जीव में है।"

"ईश्वर में महान् शक्ति रहती है। जीव में अल्प शक्ति है। ईश्वर सर्वज्ञ है। जीव अल्पज्ञ है।"

"माया और कुछ नहीं है यह बुद्धि है। यह शब्द संस्कृत धातु 'मा' (माप) और 'या' (यंत्र) से बना है। जिस यंत्र से सब तोल माप होती है और माप की जाती है वह बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

"यह माया या बुद्धि दो प्रकार की है—एक ईश्वरीय दूसरी जीवी।"

"ईश्वर इसी अपनी बुद्धि से संसार का प्रबन्ध करता है और जीव भी इसी के सहारे अपना व्यौपार और व्यौहार का साधन करता है। ईश्वरीय माया सर्वज्ञ है और जीवी माया अल्पज्ञ है। यह दोनों में भेद है।"

"ईश्वरीय माया व्याप्त शक्ति है और जीवी माया अव्याप्त शक्ति है। ईश्वर में केवल एक माया है और जीव की माया में अनेकता है।"

"ईश्वर माया पति है। माया ईश्वर के आधीन है और जीव माया के आधीन है। माया जिसके आधीन हो वह ईश्वर है और जिस माया के आधीन यह प्राणी है, वह जीव है।"

"ईश्वर, जीव और माया के प्रश्नों के यह संक्षिप्त उत्तर हैं।"

लक्ष्मण—"यह सच है और इसे मैं समझ गया। यदि माया बुद्धि ही मात्र है तो जीव को इससे दुःख क्यों होता है?"

राम—"ईश्वर की माया में एकता है। वह उसके सहारे रहती है। जीव की माया में अनेकता है। यह अनेकता उसके दुःख का कारण है।"

"एक बात तो यह हुई। दूसरी बात यह है कि जीव पर

दो मायाओं का प्रभाव पड़ा हुआ है। ईश्वरीय और जीवी माया का द्वन्द होने से यह द्वन्द पना उसके दुख सुख का कारण बन गया है।"

"तीसरी बात यह है कि ईश्वरीय माया सूक्ष्म है। यह पर्दा तो है लेकिन सूक्ष्म होने से वह ईश्वर की शक्ति को ढक नहीं सकती। जीव पर दोनों मायाओं ने पर्दा डाल रक्खा है और वह अंधेरे में रहता है। ईश्वरीय माया ईश्वर की और ईश्वरीय शक्ति की प्रकाशक मात्र है और जीवी माया स्थूल होने और ईश्वरीय माया के आधीन बनने से मोटा पर्दा बन गई है।"

लक्ष्मण—"यह ईश्वरीय और जीवी माया का रूप क्या है?"

राम—"एकता और अनेकता। उदाहरण से समझो। ईश्वर ने अपनी माया से स्त्री को बनाया। वह ईश्वर के जगत में एक स्त्री मात्र है। लेकिन जीव की दृष्टि में वह स्त्री, स्त्री तो है लेकिन वह माता, बहिन, फूफी, चाची, ताई, दादी, नानी और अनेक नाम वाली हो जाती हैं और इस अनेक नाम वाद को प्रपंच कहते हैं। यह भेद है।"

आठवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण सम्वाद (लगातार)

लक्ष्मण—"यह आश्चर्य है कि एक को माया दुखी नहीं करती और दूसरे को दुखी करती है।"

राम—"इसमें आश्चर्य कोई नहीं है। दुख एक में नहीं है। दुख तो दो और दोपने में है।"

लक्ष्मण—"परन्तु यह दोपना तो ईश्वर में भी है। एक ईश्वर और दूसरी उसकी माया।"

राम—"यह ईश्वर का दोपना ईश्वर की दृष्टि से नहीं है

बल्कि जीव की दृष्टि से है। नहीं तो ईश्वर और ईश्वरीय माया अभेद ही है। जीव ही ने इस भेद की कल्पना कर रक्खी है।"

लक्ष्मण—"तो जीव में यह शक्ति है कि वह अपनी कल्पना से द्वन्द को रच सकता है?"

राम—"क्यों नहीं! दो पने का भाव तो जीव ही में रहता है।"

लक्ष्मण—"आपने ईश्वर और जीव में राजा और प्रजा की अपेक्षा बताई है। क्या इनमें यही सम्बन्ध है या इसके अतिरिक्त और भी कई बात हैं?"

राम—"जीव ईश्वर का अंश है और यह ईश्वर के समान अविनाशी है।"

लक्ष्मण—"जब जीव ईश्वर का अंश है तो फिर वह दुखी क्यों है? ईश्वर तो सुख रूप है जीव को भी सुख रूप होना चाहिये।"

राम—"ईश्वर में न सुख है न दुख है क्योंकि जहाँ और जिसमें सुख रहेगा, वहाँ और उसमें दुख भी रहेगा। बिना सुख के दुख नहीं और बिना दुख के सुख नहीं। दोनों साथ साथ चलते हैं। जीव ने ईश्वर को सुखी कल्पना कर रक्खा है और अपने को दुखी मान रक्खा है, इसलिये ईश्वर का सुखी होना जीव की दृष्टि से है, नहीं तो उसमें सुख है न दुख है।"

लक्ष्मण ने कहा—"ईश्वर सच्चिदानन्द कहा जाता है।"

राम—"यह सच है लेकिन यह कहना भी जीव दृष्टि से है। जीव में सत् की सत्ता (जीवन) है, जीव में चित्त की चित्ता (बुद्धि) है और जीव में आनन्द की आनन्दता (सुख) है। यह तीनों गुण जीव में हैं। वह इन गुणों को साथ रखता हुआ अपने आपको अधूरा और ईश्वर को पूरा समझता

और उसमें सत्, चित्, आनन्द की पूर्णता को आरोपण करता है। जो जैसा रहता है उसका विचार वैसा ही हुआ करता है और जो जैसा विचारता है और सोचता है वह वैसा ही बन जाता है।"

लक्ष्मण—"यह सच है लेकिन यह तो बताइये कि जीव का अंशा अंशीभाव किस प्रकार का है?"

राम—"जैसे समुद्र और समुद्र की बूंद, जैसे सूर्य और सूर्य की किरण, जैसे रेत का टीला और रेत का अणु, जैसे जंगल और जंगल के वृक्ष, या जैसे पानी और मछली।"

लक्ष्मण—"यह उदाहरण तो मेरी समझ में आगये। अब मैं यह समझता हूं कि ईश्वर का अंश होते हुये यह अंश दुखी होता है और मरता खपता है। समुद्र खारा है। वह खारापन उसकी एक एक बूंद में है। ऐसा गुण जीव में नहीं दिखाई देता।"

राम—"ईश्वर अविनाशी है। जीव भी अविनाशी है। ईश्वर जीता जागता है। जीव भी जीता जागता है। ईश्वर में बुद्धि है, जीव में भी बुद्धि है। ईश्वर में सुख है; जीव में भी सुख है। ईश्वर सच्चिदानन्द है, जीव भी सच्चिदानन्द है। इस दृष्टि से सारे गुण जो ईश्वर में हैं या जीव ने कल्पना कर रक्खें हैं, वह सब के सब जीव में हैं।

एक जीव भी इनके बिना नहीं है। तुमको जो शंका रहती है वह केवल इतनी है कि जैसे समुद्र खारी है वैसे ही बूंद भी खारी है। यह शंका तो सही है लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि यह शंका क्यों है? यह प्रश्न किये होते तो सहज रीति से शंका का समाधान हो गया होता। मन में है कुछ और कहते हो कुछ और!"

मैं आप ही इसकी जड़ में तुमको पहुँचाये देता हूँ। जीव

ने समुद्र को अपने से अलग मान रक्खा है। इसकी दृष्टि में समुद्र पूर्ण है और वह अधूरा है। अधूरे पन के गुण से वह अपने आपको हर बात में अधूरा समझ रहा है और ईश्वर को अपने आप से अलग मान रक्खा है तो उसे अधूरा और अलग होना भी चाहिये। नहीं तो जीव और ईश्वर में यह भेद न होता और न ऐसी शंका उठती।"

लक्ष्मण—"यह भेद क्यों है? और किस लिये है? इसका कारण क्या है?"

राम—"माया, बुद्धि और माया बुद्धि का प्रपंच।"

लक्ष्मण—"इस माया का विस्तार कितना है?"

राम- "जहाँ तक तुम्हारी इन्द्रियाँ जाती है, जहाँ तक तुम्हारी वाणी कथन कर सकती है, जहाँ तक तुम्हारा मन पहुँचता है और जहां तक का निर्णय तुम्हारी बुद्धि कर सकती है वहाँ तक इस माया का विस्तार है।"

लक्ष्मण—"उसके आगे क्या है?"

राम—"इसके आगे इन्द्रिय, मन, वाणी और बुद्धि नहीं जाती। ऐसी दशा में न कोई कुछ कह सकता है न समझ सकता है। फिर कोई कहना भी चाहे तो क्या कहे और क्यों कहे?"

नवाँ समुल्लास

राम लक्ष्मण सम्वाद (लगातार)

लक्ष्मण—"प्रभू! आपने समझाने को तो सब कुछ समझा दिया और मैं समझ भी गया, लेकिन इतना स्पष्ट रीति से और भी बता दीजिये कि ईश्वर और जीव की माया का भेद क्या है?"

राम—ईश्वर की माया में मेरा तेरा पना नहीं है। जीव की माया में मेरा तेरा पना है। इस मेरे तेरे पने में अहंकार रहता है और यह अहंकार मोटा रस्सा बन कर जीवों को कस कर बाँध लेता है और वह असमर्थ होकर दुखी रहते हैं। यह मेरा तेरा पना न रहे तो दुख का नाश हो जाये। ईश्वर की माया में यह नहीं है इसलिये उसे बंधन नहीं है।"

मोर तोर संसार है, और नहीं संसार।
मोर तोर बन्धन महा, बन्धन का बिस्तार॥
मोर तोर करता फिरे, भ्रम अज्ञान भुलान।
मोर तोर में फँस मरा, निबल जीव अंजान॥
मोर तोर को त्याग दे, सहित प्रेम अनुराग।
मोर तोर में जो फंसा, मन्द है उस के भाग॥

लक्ष्मण—"प्रभो! यह बन्धन महा कठिन है। इसके काटने का सहज उपाय क्या है?"

राम—"ईश्वर की सगुण उपासना। गुण के साथ साथ जो मनुष्य ईश्वर की उपासना करेगा वह सहज रीति से इस संसार के बन्धन को काट सकेगा। इससे सुगम, सहज और सरल साधन कोई नहीं है।"

लक्ष्मण—"क्या निर्गुण उपासना लाभदायक नहीं है?"

राम—"क्यों नहीं! लेकिन उसके अधिकारी लाखों में एक आध मिलते हैं। वह ज्ञानियों का पंथ है। ज्ञानियों की संख्या अधिक नहीं होती। साधारण मनुष्य बहुत होते हैं। कहने के लिये तो लोग अहंकार और अभिमान से कहते रहते हैं कि हम निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं लेकिन यह कहना ही कहना है। इन बेचारों को तो इतनी भी समझ नहीं है कि किसे सगुण और किसे निर्गुण कहते हैं।"

लक्ष्मण—"सगुण और निर्गुण का भेद क्या है ?"

राम—"जो गुण के साथ हो वह सगुण और जहाँ गुण का पता न लगे वह निर्गुण है।"

"गुण तीन हैं—सत्, रज, तम। तत्व तीन हैं-कारण, सूक्ष्म, स्थूल।

अवस्था तीन हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और इन्हीं तीनों के अन्तरगत सगुण और निर्गुण का भेद है। इस पर विचार करो तो यह रहस्य तुम्हारी समझ में आजाय।"

लक्ष्मण—"तब समझाइये।"

राम—"मुझे देखो। मैं सगुण स्वरूप हूँ। मेरे शरीर है, इन्द्रियाँ हैं और मन आदि के स्थल में मुझे तुम देखते हो। यह देखना जाग्रत अवस्था में होता है और उसे दर्श पश कहते हैं। जब उस रूप के साथ प्रेम हो गया तो जाग्रत को छोड़ कर तुम स्वप्न में मेरा सूक्ष्म रूप देखोगे। यह गुण है और उसी में गुणों के आकार रहते हैं। जब इसमें घनापन आगया तो यह स्वाभाविक रीति से तुमको कारण अवस्था में ले जायगा, जो सुषुप्ति है। यह निर्गुण कहलाता हैं। उसमें किसी गुण का भास नहीं होता।

सगुण गुणों के साथ है। गुण गुण ही है और निर्गुण में गुण का अभाव है।

कर्म सगुण में, ध्यान मन के गुण में और लय निर्गुण में होता है।

मूढ़ और अज्ञानी प्राणी कहते हैं कि अच्छे गुणों का होना सगुण है और बुरे गुणों का न होना निर्गुण है, ईश्वर को अच्छे गुण वाला मानकर पूजो और उसे बुरे गुण वाला न समझो और पूजा करो। यह भाव तो अच्छा हैं लेकिन इसमें

सचाई का अभाव है। यह न सगुण है न निर्गुण है। जाग्रत लीला सगुण, स्वप्न लीला गुण, और सुषुप्ति लीला निर्गुण है। यह व्याख्या है।

सगुण में दर्शन, गुण में ज्ञान और निर्गुण के लय में चरित्र है।

निर्गुण उपासना में न कर्म है न ज्ञान है न उपासना है। यह तो मन को इनसे रहित करना है। यह इसकी समझ से बाहर है।"

लक्ष्मण—"ईश्वर यदि व्यापक है तो सब में इसका ध्यान उपासना और ज्ञान होना चाहिये।"

राम—"यह कहने सुनने की ही बात है। ध्यान कहते हैं धारण करने को, पकड़ रखने और अपने अन्तर में प्रकट करने को और उसकी सम्भावना केवल दृष्टि में आने वाले रूप में है और हो सकती है।"

जिसको आखों से नहीं देखा, है उसका ध्यान क्या ?।
जब न कानों से सुना, तुमही कहो फिर ज्ञान क्या ?॥१॥
देखलो आँखों से पहले, सुनलो इसके भेद को ?।
देखने सुनने बिना, होगा तुम्हें अनुमान क्या ?॥२॥
है सगुण पहला तो, निर्गुण इसके पीछे ए लखन ?।
जब नहीं यह फिर बतादो, जान क्या पहिचान क्या॥३॥
नाम लेते हो, तो नामी से मिलो समझो इसे ?।
जब नहीं मिलते तो फिर, है नामी का स्थान क्या ?॥४॥
पोथियों को पढ़ लिया, और स्तुति को गा लिया ?।
ऐसे जनकी स्तुति क्या, और उसका गान क्या ?॥५॥

"मूढ़ अज्ञानी जन बड़े अहंकार से कहते फिरते हैं कि हम तो सर्व व्यापक ईश्वर का ध्यान करते हैं। उनकी बातों

को सुन लो। वह ज्ञान और ध्यान दोनों से रहित हैं। इन्हें किसी बात की समझ नहीं है।"

लक्ष्मण—"आपने सगुण उपासना की महिमा कही और वह सच भी है, लेकिन इसमें रहस्य क्या है?"

राम—"आग अपने अग्नि मंडल में सारी वस्तुओं में सूक्ष्म रूप से व्यापक है। वह मिट्टी में, पत्थर में, लोहे में, पानी में, लकड़ी में सब जगह है, लेकिन वह न किसी की साथी है न किसी की विरोधी है। उससे न तुम्हें गर्मी मिलेगी न खाना पकेगा। चाहो उसे प्रकट करो और अपने व्यवहार में उससे लाभ उठाओ। यों काम करने और करते रहने से तुम उसके स्थूल रूप को देखकर उसके सूक्ष्म रूप का अनुमान कर सकोगे और फिर धीरे धीरे उसका कारणरूप भी समझ में आ जायगा। यह रहस्य है।"

दसवां समुल्लास

राम लक्ष्मण संवाद (लगातार)

लक्ष्मण चुप हो गये। राम ने अपने भाषण को बंद नहीं किया।

राम ने कहा—"भाई! विद्या और अविद्या, ज्ञान और अज्ञान हैं। ज्ञान से भ्रम की जड़ कटती है और अज्ञान से भ्रम बढ़ता है। बन्धन का मूल कारण अविद्या और अज्ञान है और मुक्ति का मूल कारण विद्या और ज्ञान है।

"इस विद्या के दो रूप हैं—एक परा और दूसरा अपरा। परा विद्या केवल गुरू की कृपा, सतसंग और भक्ति से प्राप्त होती है। अपरा विद्या पुस्तकों, ग्रन्थों, और लेखकों की रची हुई बाणी से मिलती है। उपयोगी दोनों हैं लेकिन परमार्थ में

केवल परा विद्या सहायक होकर परम पद दिला देती है। एक व्यवहार है और दूसरी परमार्थ है।"

"धर्म से मन पवित्र होता है और योग साधन से ज्ञान मिलता है। बिना धर्म और साधन के परम पद नहीं मिलता।"

"अविद्या से संसार उत्पन्न होता है और यह गले की फाँसी बन कर जीवों को दुखी करती रहती है। विद्या से इसका नाश होता है। विद्या का मंतव्य परा विद्या से है।"

"जब परा विद्या से उपलब्धि होती है. तब सारा जगत ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है—"एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति, अखिलम् इदम् ब्रह्म, ब्रह्म सत्यम् जगत मिथ्या" और इस एक का भाव अंतःकरण में इस प्रकार प्रवेश करके दृढ़ हो जाता है कि फिर भ्रान्ति, अशान्ति और दुख क्लेश नाम मात्र के लिये भी नहीं रहते।"

'इन सब का सार भक्ति है, जो हर बात का अधिकार और संस्कार प्राप्त कराती है। इससे लोक और परलोक दोनों ही का सुधार होता है।"

"जो मन, वचन और कर्म से मेरे भक्त हैं वह माँ, बाप अड़ौसी, पड़ौसी बड़े छोटे सब के साथ प्रेम का बर्ताव करते हैं। उनमें न दंभ है न कपट है. न मान है न ईर्ष्या है. न काम है न क्रोध है। उनका काम निष्काम होता है। ऐ लक्ष्मण! मेरे भक्तों के यही लक्षण हैं। और चाहे मैं अयोध्या में रहूं या बन में, चाहे तुम्हारे साथ रहूँ या सीता के, सच्ची बात यह है कि मैं निरंतर रात दिन इन्हीं भक्तों के अन्तर में निवास करता हूँ। जिनको मुझ से मिलने की इच्छा हो वह मेरे भक्तों से मिलकर मेरी खोज करें। यह उन्हें मेरा पता देंगे और मुझ तक और मेरे परमधाम तक उन्हें पहुँचा देंगे।"

एक हूँ मैं एक और भक्तों के निशदिन पास हूँ।
मैं ही उनका शिव हूँ और मैं मानसर कैलाश हूँ॥
मैं नहीं हूं जल न अग्नि मैं न वायु पृथवी।
मैं न जल थल का हूं वासी और न मैं आकाश हूं॥
प्राण हूं प्राणों का, जीवन का हूँ सबके तत्व सार।
मैं हूँ क्या तुमको बताऊँ, साँसों का मैं सांस हूँ॥
भक्तों के हृदय का वासी, उनके घट में हैं निवास।
उनका रमता राम, उनका साथी और सहवास हूँ॥
एक हूँ कहने को, भक्तों के लिये हूं मैं अनेक।
उनका मैं विश्वास निश्चय, सच्ची उनकी आश हूं॥
मैं हूँ उनका वह हैं मेरे, औरों से मैं हूं अलग।
दास जो मेरे बने लक्ष्मण! मैं उनका दास हूँ॥
छोडो भ्रम और भ्राँन्ति, भक्ती करो मेरी सदा।
सुख लो और आनन्द मुझ से, मैं सदा सुख रास हूँ॥

यह कह कर राम चुप हो गये, लक्ष्मण पाँव पड़ गये।

मैं अज्ञानी और मूढ़ जीव हूँ। मुझे ज्ञान ध्यान की समझ नहीं है। आपने आज दया करके मुझे सबका सारांश थोड़े में समझा दिया। इससे अधिक समझ बूझ नहीं चाहिये। हां! इतना हो कि मैं आपका मन, बचन और कर्म से सेवक बना रहूँ। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

राम ने लक्ष्मण को उठाकर छाती से लगाया। उनके सर पर दया का हाथ फेर कर कहा—"एवमस्तु,'। इतने में सीता जी पर्ण कुटीर से बाहर आगईं और इनका संवाद समाप्त हो गया।

द्वितीय भाग

पहला समुल्लास

सूर्पनखा का पंचवटी में आना

रावण लंका का नीतिवान प्रतापी राजा था। सारे भूमंडल में इसी के नाम की बधाई बजती थी। उसने देश देशान्तर के राजाओं, भुवन भुवनान्तर के ऋषियों मुनियों और लोक लोकान्तरों के देव और देवताओं को वश में कर रखा था। उसके एक शिर में दस सिरों की शक्ति थी और उसके दो हाथों में बीस भुज दण्डों का बल था। दसों इन्द्रियों के मुख्य-मुख्य देवता उसके आधीन थे। इसी दृष्टि से वह दसमुख कहलाता था। पंडित, शास्त्री और वेदों का जानने वाला था। यहां तक कि वह तमाम वेद का पाठ बड़े सुरीले राग में करता था और इस वेद पर उसने अपनी टीका कर रक्खी थी। लंका उसके राज्य में स्वर्णभूमि कहलाती थी। सभ्यता में उसकी साख मानी जाती थी। लंका का प्रबन्ध उसने इस प्रकार कर रक्खा था कि अन्य देश के मनुष्य वहां नहीं जा सकते थे। मनुष्य तो मनुष्य ही थे, लंका जाते समय अन्य देश के पक्षियों के पंख जलते थे। उसके गुप्त दूतों की सेना अनेक भेषों में फैली हुई थी जो कि हर जगह के समाचार पहुँचाया करती थी। इसी सेना में उसके सम्बन्धी भी थे।

राम जब दंडक बन की पंचवटी में आकर ठहरे। रावण की बहिन जो गुप्त दूती थी, बड़ी सुन्दर और रूपवती थी। उसके उंगलियों के नख सूप (छाज) के आकार के थे।

इसलिए बचपन में उसका नाम सूर्पनखा रक्खा गया और इसी नाम से वह प्रसिद्ध थी।

उसने सुना दो तपस्वी युवा पुरुष बन में आकर रहने लगे हैं। वह क्यों आये, इसका उसे ज्ञान नहीं था। भेद लेने और रावण को समाचार सुनाने के विचार से वह पंचवटी में आई। राम और लक्ष्मण की सुन्दरता इसकी आँखों में गई। देखते ही मोहित होगई।

राम सांवले रंग के थे। उनका श्याम वर्ण का शरीर नीले कमल या अलसी के नीले रंग का सा था। साँवला रूप गोरे रंग से भी अधिक सुन्दर लगता है। वह राम के पास आई और पूछा—"तुम कौन हो?" राम ने उत्तर दिया, "हम दोनों भाई अवध देश के राजकुमार हैं। पिता जी ने हमको बनवास दिया और हमारे छोटे भाई भरत को राज दिया। हम यहाँ तप करने आये हैं। हमारे नाम राम और लक्ष्मण हैं। साथ में हमारी पत्नि सीता भी आई है। यह अकेली हमारे बिना अवध में न रह सकी। हमने तुम्हें अपना परिचय सुना दिया। अब यह बताओ तुम कौन हो और इस बन में कैसे अकेली फिर रही हो।"

सूर्पनखा ने उत्तर दिया—"मैं रावण की बहिन हूं। तुमने उसका नाम सुना होगा। मैं बहुत सुन्दर और रूपवती हूं। मेरी सुन्दरता का जैसा कोई पुरुष अब तक दृष्टि में नहीं आया। इसलिये मैंने अब तक अपना विवाह नहीं कराया। क्वारी हूँ। दैव योग से आज तुम को देखा। जैसी मैं रूपवती हूँ वैसे ही तुम भी रूपवान् हो। तुमको देख कर मेरा मन मोहित हो गया है। तुम मुझे अपनी स्त्री बनालो। हम दोनों का जोड़ा बहुत अच्छा रहेगा।"

राम बोले—"सुन सुन्दरी ! मैं तो अपनी पत्नी के साथ है और मैंने प्रतिज्ञा की है कि स्त्री व्रत धारण कर रक्खूं और एक को छोड़कर दूसरी स्त्री का मुँह भी न देखूं। इसलिये मैं विवश हूं। प्रतिज्ञा बद्ध हूँ। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण जो उस वृक्ष की छाया में बैठा हुआ है, ब्रह्मचारी है। तू उसके पास जा। वह तुझे स्वीकार करता है तो मैं उसे प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दूँगा।"

सूर्पनखा लक्ष्मण के पास गई। वह गोरे रङ्ग के थे, सुनहला छरैरा बदन ! सूर्य के समान उनका तेज था। उन से भी वही बात कही।

लक्ष्मण ने कहा—"मैं राम का सेवक हूँ मैंने १४ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है जिसे मैं भंग नहीं कर सकता और यदि मैं तुझे अपने साथ रख भी लूँ तो तू सीता महारानी की सेविका और दासी बनना स्वीकार न करेगी। मैं स्वयं राम का दास और सेवक हूं। सेवक का धर्म महा कठिन है। इसलिये मैं तुझ से बेवश होकर कहता हूँ कि मेरे विचार को तू त्याग दे। राम के पास जा। वह राजा महाराज हैं। राजाओं के रनवास में कई कई रानियां रहती हैं और रह सकती हैं।"

वह निराश होकर राम के पास लौट आई। "तुम्हारा भाई मुझे अपने पास रखना नहीं चाहता।"

राम ने समझा बुझाकर लक्ष्मण के पास भेजा। वह आई। लक्ष्मण ने कहा—"सुन्दरी ! तुझे लज्जा नहीं आती तू ने लाज को धोकर पी लिया है। मैं ब्रह्मचारी हूं। स्त्री करना तो अलग रहा, मैं स्त्री का रूप तक देखना नहीं चाहता।"

वह खिसियानी हो गई। लक्ष्मण की बातों ने उसके हृदय की वेदी के अग्नि कुंड में आहुति का काम किया। क्रोधाग्नि

ाज्वालत होकर प्रचन्ड होगई। उसने कहा—"यह सीता मेरे ास्ते में कांटा है। यह न होती तो तुम मुझ पर लट्टू हो गये ोते और मेरे रूप को देखकर रीझ गये होते। यह निबल ुबली पतली अबला मेरे सामने क्या है! मैं इसे अभी देखते खते खाजाती हूँ। इसकी हड्डी पसली को इस प्रकार चबा ाऊँगी कि डकार तक न लूँगी। तुम स्त्रियों की डाह की मझ नहीं रखते।"

वह सीता पर झपटने ही को थी कि राम ने अपनी आँखों े लक्ष्मण को इशारा किया। वह दौड़ कर आये और उसकी ाक और कान काट कर उसके हाथ में दिया—"तेरी जैसी नर्लज्ज स्त्री के साथ ऐसा ही वर्ताव करना उचित है।"

वह रोती चिल्लाती वहाँ से भाग खड़ी हुई। नाक कान ाट कर उसके हाथ में देना रावण के साथ लड़ाई मोल लेने ा चैलेंज था:—

नोट :— सूर्पनखा— स्थूल रूप कामातुर स्त्री का क्षोभ।

दूसरा समुल्लास

राम और खर-दूषण और त्रिसरा के साथ युद्ध

रावण का नियम था कि उसके गुप्त दूत और गुप्त दूतियों ो सहायता के निमित्त आस पास बलवान सेना भी रहती ो। इस सेना के सेनापति खर और दूषण थे। यह दोनों ावण के भाई भी थे।

सूर्पनखा के नाक कान दोनों कट गये। गेरू के समान न इन्द्रियों से रक्त की धारा बह चली। सारा मुँह और रीर लहू लुहान होगया और क्रोध से उसकी आँखें लाल ँगारा हो रहीं थीं।

तीनों भाइयों ने उससे पूछा--"तेरी यह गति किसने बनाई ?"

आग भभूका बनी हुई सूर्पनखा बोली—"बन में दो तपस्वी लड़के आये हैं। उन्होंने मेरी दुर्गति की है।"

इतना सुनना था कि भाइयों ने उसी समय कटक सजाने और तपस्वी बालकों को दण्ड देने का विचार किया। राक्षसों का दल एकत्रित हुआ और जब यह पंचवटी के समीप पहुँचे, राम ने देखा बहुत धूल उड़ती आरही है और इसके पीछे लड़ाकों का दल आरहा है।

लक्ष्मण से कहा—"निश्चर आगये। सूर्पनखा उन्हें बुला लाई है। तुम सीता को किसी वृक्ष में छिपा आओ और इस भयंकर युद्ध में मेरा साथ दो।"

लक्ष्मण ने ऐसा ही किया और दोनों रणभूमि में आकर डट गये।

सूर्पनखा राक्षस दल के आगे थी। यह कुसुगन था। राक्षसों ने राम को आकर ललकारा।

शूर हो, वीर हो, रणभूमि में आकर डट जाओ।
अपनी करनी का जो फल पाना है आकर वह पाओ॥
तुम हो कायर तो न मुँह सामने आकर दिखलाओ।
भागो और भाग के तुम प्राणों को अब अपने बचाओ॥
मृत्यु का सामना है, सामने आओ वीरो।
खोल कर छाती लड़ो, रण से न जाओ वीरो॥

राम और लक्ष्मण दोनों ने बाण बरसाने आरंभ किये। जैसे सूर्य की किरणों से बादलों की काली काली घटायें फट जाती हैं शत्रुओं के दल पल के पल में छिन्न भिन्न होने लगे।

केवल दो ही लड़के थे। इधर हजारों थे। वह इनक

सामना न कर सके। सांप के समान जब लपलपाते हुये बाण धनुष से छूटते थे एक के साथ साथ दस को डस लेते थे और वह बेदम होकर पृथ्वी पर कटे हुये ताड़ों के समान अड़ अड़ाधम करते हुये गिर पड़ते थे। खर दूषण ने इन योद्धाओं के बल को देखा। यह महाबली राजकुमार हैं। इनका सामना करना महा कठिन। दूतों को भेज कर कहला भेजा। "तुम छोटी आयु के बालक हो। अपनी तीर कामना हमें देदो, घर लौट जाओ। हम तुम्हें मारना नहीं चाहते।"

राम ने उत्तर में कहा—"हम अपने राजा भरत के भेजे हुये तुम जैसे खलों को दण्ड देने और तुम्हारे नाश करने को आये हुये हैं। तुम जैसे दुष्कर्मी, दुष्टों को ढूंढते फिरते हैं। तुम हमको क्या रक्षा दोगे, हम उस समय तक तुम्हें चैन न लेने देंगे जब तक एक एक को मिट्टी और भूमि में न लिटा देंगे।"

जब दूतों ने आकर यह बात सुनाई, राक्षस दल में क्षोभ आया और समुद्र की लहरों के समान रण भूमि में पिल पड़े। "मारो, मारो, इन्हें भगाने न दो, हो सके तो जिन्दा पकड़ लो, इन्हें लड़ने भिड़ने का स्वाद मिले।"

राम लक्ष्मण ने धनुष बाण संभाला। फिर वही मार धाड़ का दृश्य आंखों के सामने आया। शत्रु दल हथियारों से सजा सजाया आया था। बर्छे, भाले, तलवार, फर्से बाण सब ही कुछ उनके साथ थे। यह राम लक्ष्मण के बाणों के सामने नहीं ठहर सके। बाण क्या गिरते थे, बिजली गिरती थी। राक्षस जल भुन कर मर जाते थे। बाणों की बाढ़ ने राक्षसी सेना को दम के दम में लहू की बहती हुई नदी में डुबा दिया। यह इस प्रकार उसकी धार में डूबे जैसे कोई बहती हुई बरसात की नदी अपने उमड़ते हुये पानी में दोनों तरफ के तटों की पृथ्वी

को काटते हुए गिराती चलती है। एक भी तो लड़ाकुओं में से नहीं बचा। जो कायर थे उनमें भगदड़ पड़ गई। राम ने उनका पीछा नहीं किया। हां, जो सामने आया उसे अपने बाणों का निशाना बनाने से नहीं चूके।

जब यह मर मिटे, आकाश के रहने वाले देवताओं ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की, फूल बरसाये और नभ मंडल से जै-जै के शब्द की धुनि चारों ओर से आने लगी। अब जाकर उन को निश्चय हुआ कि राम से इनकी पूरी पूरी सहायता होगी और जिस काम के लिये उनका अवतार हुआ है वह सब प्रकार से पूरा होगा।

सीता खोखले वृक्ष की कंदरा से बाहर आई। दोनों वीर उस समय वीर रस के रूप बने हुये थे। यह उन्हें देख कर प्रसन्न हुई।

नोट—१-खर-गिद्ध बुद्धि, २-दूषण-दोष-बुद्धि, ३-त्रिसिरा तीन सिर वाला (सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी) राक्षस।

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

सूर्पनखा आने को तो तीनों भाईयों के साथ रणभूमि में आगई थी, लेकिन जब राम लक्ष्मण के बाण बरसने और राक्षसों के सिर कट कट कर आकाश मंडल में पंख खुले पक्षियों के समान उड़ने लगे, वह उस रणभूमि से भाग निकली और अपने निवास स्थान में ठहर कर उनकी प्रतीक्षा करने लगी।

जब युद्ध समाप्त हुआ और धुआँ उड़ने लगा, उसने समझा कि निश्चर दल सब का सब मारा गया और उनकी लाशों को आग दे दी गई। इसके पीछे भगीदड़ा पहुंचे। लड़ाई के परिणाम से उसे सूचित किया।

वह घबराई, डरी और व्याकुल हो गई। स्त्री थी। शूर वीर योद्धा न स्त्रियों पर हाथ उठाते हैं और न उनका अपमान करते हैं। यहाँ पंचवटी में यह अनर्थ हुआ कि उसके नाक कान काट लिए गये। कहीं ऐसा न हो कि राम लक्ष्मण वहाँ पहुँच कर उसे भी ठौर ठिकाने लगादें। वह वहाँ से भी भागी और लंका में पहुंची।

रावण अपने महल में था। उसने जाते ही उसे उकसाना आरम्भ किया। "सुरापान पीकर तू मतवाला बना रहता है। खाया पीया और पांव फैला कर सो रहा। सिर पर आपत्ति मंडला रही है और तुझे अपने सिर और पाँव तक की खबर नहीं है। बिना नीति के राज काज नहीं चलता, बिना सत्कर्म के धर्म नहीं ठहरता। तप का नाश कुसंग से होता है, बिन सोचे समझे विवेक की हानि होती है। जो मनुष्य बैरी, आग, पानी, ऋण (कर्ज) और पाप को छोटा समझता है, उसके बचाने में ईश्वर भी असमर्थ है। देख! मैं तेरी बहिन कहलाती हूं। तेरे होते हुये मेरी क्या दशा की गई है।"

इतना कह कर वह रोने लगी।

रावण या तो उन्मत्त पड़ा हुआ लेटा था या घबराकर उठ बैठा। "यह क्या हुआ! किसने तेरे नाक कान काटे हैं?" सूर्पनखा ने अपने नाक और कान उसके आगे रख दिये। अवध नरेश के दो लड़के राम और लक्ष्मण अपना देश छोड़ कर दक्षिण में आये हैं। दण्डक बन की पंचवटी में ठहरे हुए हैं और कछार के सिंहों के समान बन में निडर फिर रहे हैं।

उनका बल पाकर ऋषि मुनि, जो अब तक तेरे वशीभूत थे, अभय हो गये हैं। यह देखने में छोटे लड़के हैं, लेकिन बल, पौरुष और पराक्रम में अद्वितीय हैं। यह सुन्दर भी बहुत हैं और इनके साथ एक स्त्री है, जो चाँद का टुकड़ा है। मैं समाचार पूछने गई। राम के भाई लक्ष्मण ने तेरी गुप्त दूती समझकर नाक कान काट लिये और कहा—"राजनीति गुप्त दूतों का दण्ड भी बताती है।" मैं इस अपमान को सहकर खर दूषण और त्रिसरा के पास गई। उन्हें अपनी दुर्गति सुनाई। उन्हें वह मारने दौड़े और उल्टे आप मारे गये। एक वीर राक्षस भी जीता नहीं बचा।"

रावण महल से उठ कर सभा में आया। अपने कर्मचारियों से कहा— 'खरदूषण और त्रिसिरा मुझ से बलवान थे। राम ने उन्हें मार गिराया। मेरी बहिन के नाक कान काट लिये। यह यहाँ अनुचित काम हुआ, कहो तुम या कहते हो ?"

सभासदों ने उत्तर दिया—"जान का बदला जान, स्त्री के बदले स्त्री। उन पर चढ़ाई की जाये, उन्हें जान से मार दिया जाये और उनकी स्त्री छीन ली जाये।"

रावण सभा से उठ कर महल में आया। रात भर विचारता रहा—"यह राम लक्ष्मण कौन हैं जो निडर होकर इस प्रकार मेरे राज में आये हैं। उसे नींद नहीं आई। करवटें बदलता और सोचता रहा। सम्भव है कि महा प्रभू ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार धारण किया है और यह लीला तेरे कल्याण के हेतु हो रही है। निशाचर होने से मैं भक्ति और ज्ञान का अधिकारी नहीं हूं। अब और कुछ न करूँगा। उनसे वैर और विरोध ठानूंगा, लड़ूंगा, खेल खिलाऊँगा, कटूंगा, मरूंगा। इसी में मेरी भलाई है।

ज्ञानी कहते हैं कर्म का अंत करदो। दो अंत एक साथ मिल जाते हैं। वैर भाव मेरे लिये सुगम है। मेरी भलाई उनके मित्र या भक्त बनने में नहीं है बल्कि शत्रुता के व्यवहार में ही मेरा कल्याण है। इससे जल्द उद्धार हो जायगा।"

उसे पहले जन्म की दशा और कथा का स्मरण हुआ, नींद आगई और सो गया।

दूसरा समुल्लास

राम सीता का सम्वाद

जिस रात को रावण सूर्पनखा से राम के आने का समाचार पाकर करवटें बदलते सो रहा था, उसी रात के दूसरे दिन प्रातःकाल राम उठे। लक्ष्मण तो कन्द मूल की खोज में बन को गये। सीता अकेली थी।

राम ने कहा—"प्रिया तू मेरी अर्द्धाङ्गिनी है। मैं तेरा अर्द्धांगी हूं। मैं पुरुष हूँ, तू प्रकृति है। मैं जगत में सत् का रूप हूँ और तू मेरी छाया है। तू मुझ से कभी अलग नहीं है। सत् (Positive) और सत्ता (Negative) तत्व हैं। इस संसार में सारे प्राणी किसी न किसी कर्त्तव्य के निमित्त आते हैं। जब तक वह उस कर्त्तव्य को नहीं कर लेते तब तक इस भू मंडल में रहते हैं और जब उनका कर्त्तव्य हो पूरा हो जाता है तो या तो दूसरे लोक या मंडल में चले जाते हैं, या अपने लोक को लौट जाते हैं। मैं किसी विशेष कारण से यहाँ प्रकट हुआ हूँ और तू भी इसी निमित्त आई है। मैं नर हूँ तू नारी है। मैं नर लीला करना चाहता हूं और तेरी सहायता चाहता हूं। तू कुछ दिनों के लिये अग्नि में प्रवेश करजा और तेरी छाया मात्र इस देह में रहे।"

यह कह कर राम ने अग्नि जलाई और सीता उस अग्नि में प्रवेश कर गई। वह केवल छाया ही छाया रह गई और राम चित्त में प्रसन्न हुये।

यह अग्नि उनके अन्तर की योगाग्नि थी और पृथ्वी की अग्नि बहाना मात्र थी।

राम का यह रहस्य लक्ष्मण पर भी प्रकट नहीं हुआ; क्योंकि वह वहाँ नहीं थे और राम यह नहीं चाहते थे कि वह इसे जानें।

तीसरा समुल्लास

सोने का हिरण

सबेरा हुआ। रावण उठा और मारीच के घर गया। वह पहिले कभी वहाँ नहीं गया था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। नमस्कार करके आसन दिया, कुशल पूछी। रावण ने उत्तर दिया—"राम ने मेरी बहिन सूर्पनखा की नाक कटवाई। मैं उनसे अपमान का बदला लेना चाहता हूँ। तू अपनी माया से सोने का हिरण बनकर राम की कुटी में जा, सीता तुझे देख कर लालच करेगी, राम तेरे मारने के लिये उठेंगे, चौकड़ी मारते हुये उन्हें दूर लेजाना और मैं सीता को हरलाऊँगा।"

मारीच ने कहा—"सुन रावण! यह राम लक्ष्मण साधारण मनुष्य नहीं हैं। कहा जाता है कि राम ब्रह्म के अवतार हैं। जब यह विश्वामित्र के यज्ञ की रखवाली के लिये आये मैं ऋषि का यज्ञ विध्वंस करने चला। साथ में ताड़िका थी। वह लक्ष्मण के बाण से मारी गई। राम के बाण ने मुझे कई योजन की दूरी पर फैंक दिया और इन दोनों भाइयों का रूप अब तक मेरी आँखों में नाचता है। जो लड़के ताड़का और सुबाहु के मारने का बल रखते हैं और खरदूषण, त्रिसिरा को

सहज में मार खिपाते हैं. वह मनुष्य नहीं हो सकते। तू राम के साथ में वैर न कर। इसमें भलाई नहीं होगी।"

रावण को क्रोध हुआ—"मैं तुम से मंत्र लेने नहीं आया, जो गुरू बन कर उपदेश देने लगा है। तू मेरी प्रजा है। मैं आज्ञा देता हूँ कि या तो मेरा कहना मान और या मैं इसी समय तुझे प्राणहृत करूँगा। बोल क्या चाहता है?"

मारीच ने मन में विचारा—"यह पाजी मुझे बिना मारे हुये न छोड़ेगा। इससे तो यही अच्छा है कि मैं राम के बाण से मारा जाऊँ। अन्त समय वह मेरे पीछे धनुष बाण लेकर दौड़ते फिरेंगे, मैं उनका दर्शन पाऊँगा और मेरी सद्गति होगी।"

इसने रावण से कहा—"बहुत अच्छा! तू जो कुछ कहता है मैं वही करूँगा।"

मारीच ने अपनी मानसिक शक्ति से हिरण का रूप बनाया। चौकड़ियां भरता हुआ पंचवटी के झोंपड़े के निकट जाकर चरने लगा। इसका रूप सुहाना और सुन्दर था। पीठ पर सोने की धारियां पड़ी थीं। सीता की दृष्टि इस पर पड़ी। राम से कहा—"इस हिरण को मारदो। इसकी मृग छाला बहुत अच्छी बनेगी।"

राम धनुष बाण लेकर उठे। उन्हें देखकर मृग भागा। वह आगे आगे, यह पीछे पीछे।

कभी उछला कभी कूदा, कभी भागा कभी चमका।
कभी दौड़ा तो उनके सामने, घबरा के आ धमका॥
उधर से वह इधर आया, इधर से फिर उधर आया।
कभी था धूप में और था, कभी वह पेड़ की छाया॥
हिरन क्या था छला वह था, दिया चकमा वह घबराये।
कभी वह दूर भागा, कभी इनके समीप आये॥

हिरण राम को घुमाते फिराते कोसों की दूरी पर ले गया। इन्होंने भी इसका पीछा न छोड़ा। वह दौड़ते दौड़ते थक गया। राम ने इसी समय अपना बाण सर किया। यह घायल होकर गिरा। "हाय लक्ष्मण! हाय लक्ष्मण!" करके पुकारा और फिर राम के रूप पर अपनी दृष्टि जमाली। ऋषि मुनि जप तप और ध्यान करते करते मर जाते हैं और राम उनके ध्यान में नहीं आते।

यहां एक कपटी और छली राक्षस के सामने आकर वह खड़े हो गये। मरते समय उसने अपना रूप धारण किया। राम जानते थे कि यह राक्षस है। इसमें उनकी भक्ति थी। 'अन्त मती सो गति।' जिसे राम का दर्शन मिला, उसकी दुर्गति क्यों और कैसे होने लगी! इसकी सद्गति हो गई और वह प्राण त्यागते ही राम के धाम को चला गया।

नोट - अभी मनुष्य अपनी प्राकृतिक सामिग्री और अपनी बुद्धि की सहायता से नाना प्रकार की कलें बनाता है। समुद्र की छाती पर उन्हें दौड़ाता है। उसके हवाई जहाज आकाश मण्डल में फिरते फिराते हैं। यह बाहर मुखी साइंस है। एक समय आने वाला है जब वह अंतर मुखी साइंस या अपनी मानसिक विद्या से जैसा चाहेगा रूप बनायेगा और जहाँ चाहेगा ध्यान करते हुये पहुँच जायगा। जो चाहेगा करेगा। यह और कुछ न होंगी उसकी मानसिक शक्तियाँ होंगी। इनके नाम (१) महिमा (२) अणिमा (३) लघिमा(४) गिरिमा आदि हैं। लंका की प्राचीन सभ्यता में यह शक्तियाँ राक्षसों को प्राप्त थीं। पहिले भी ऐसा ही हो चुका है। कुछ दिनों पीछे फिर ऐसा होगा। यह आश्चर्य जनक बात नहीं है। केवल मानसिक विद्या की क्रिया शक्ति के साधन से सम्भव है।

चौथा समुल्लास

सीता हरण

मारीच ने मरते समय भयानक शब्द करते हुये लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा। उसकी भनक सीता जी के कानों में पड़ी। वह लक्ष्मण से कह उठी-"भाई! राम पर बन में कोई आपत्ति आ पड़ी है। बन चारों ओर राक्षसों से घिरा हुआ है। संकट के समय वह तुम्हें पुकार रहे हैं। जाओ और उनकी सहायता करो।"

लक्ष्मण बोले—"माता! राम को कोई नहीं मार सकता। वह जगत में किसी महान कार्य के लिये प्रगट हुये हैं। वह कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। तुम किसी बात की चिन्ता न करो। राम मुझे तुम्हारी रक्षा करने की आज्ञा दे गये हैं। ऐसे सघन बन में तुम्हें अकेली छोड़ कर जाना मेरे लिये उचित नहीं है।"

सीता ने कहा-"क्या कहीं तुम्हारे मन में पाप तो नहीं आ गया, जो राम की आपत्ति के समय तुम मेरे पास से नहीं हिलते!"

लक्ष्मण बहुत लज्जित हुये। धनुष बाण लेकर खड़े हुये। राम की माया को नमस्कार करके कुटी के चारों ओर धनुष के आकार की गोल लकीर खींच कर कहा-"देखना! इस लकीर के बाहर न आना। इसके भीतर कोई दुखदाई जीव जन्तु न आ सकेगा।"

यह कह कर वह बन में राम को खोजने चले गये। इधर रावण ताक में लगा हुआ कहीं छिप रहा था। लक्ष्मण के जाते ही वह भिक्षु (साधु) के भेष में कुटी के समीप पहुँचा।

वह डरते हुये चोर के समान आया और भिक्षा मांगी। सीता उसे कुछ फल फूल देने लगी। रावण बोला—"मैं बन्धन की बंधी हुई भिक्षा नहीं लेता। तुम लकीर के बाहर आकर मुझे भीख दो।"

स्त्री जाति! कोमल हृदय वाली! वह क्या जानती थी कि यह रावण है। उसने उसे साधु समझा। लकीर के बाहर आते ही रावण ने उसका हाथ पकड़ा और कुछ हंसी दिल्लगी की बातें कीं। सीता बिगड़ी। "ऐ दुष्ट! तू कौन है जो राम की धर्म पत्नि से अनुचित बात कहने का साहस कर रहा है? ठहर! राम हिरण मारने बन को गये हैं। आते ही होंगे। वही इन शब्दों का उत्तर देंगे।"

रावण हंसा—"क्या तू मुझे नहीं जानती! मैं रावण हूँ जिसके आधीन सारा जगत हो रहा है। मैं तुझे लंका लेजाकर अपनी पटरानी बनाऊँगा।" सीता को क्रोध आया। वह कहने ही को थी कि रावण ने उन्हें पकड़कर अपने आकाशीय विमान पर बिठा लिया, बल फेरी और वह पक्षी के समान आकाश में मंडलाता हुआ उड़ चला। सीता को उस समय जो दुख हुआ वर्णन नहीं किया जा सकता। वह रोती हुई चली।

"हाय स्वामी! तुम कहां हो हाय राम!
आओ सीता को बचाओ हाय राम!
दुष्ट रावण ले चला लंका मुझे।
जल्द पहुँचो! जल्द आओ! हाय राम!
राम को लक्ष्मण संदेशा दो मेरा।
उनको मेरे पास लाओ हाय राम!
दुख में आपति में बिपति में हूँ पड़ी।
आके छुटकारा दिलाओ हाय राम!
देश छूटा झोंपड़ा उजड़ा मेरा।

अब तो जल्दी सुधि लो मेरी हाय राम !
मैं नहीं सह सकती हूं ऐसा वियोग।
अपने चरणों से लगाओ हाय राम !
कहना लक्ष्मण का न माना खोगई।
अब दया से तुम बचाओ हाय राम !

केकई कारण हुई दुख का मेरे।
छोड़ कर मुझ को न जाओ हाय राम !

मन बचन से कर्म से दासी बनी।

तुम न दासी को भुलाओ हाय राम !

सिंह की पतिनी को गीदड़ ले चला।

मेरी आपति को मिटाओ हाय राम !

जो ते जी मुझ को न आई मृत्यु क्यों।
मरती हूं मुझ को जिलाओ हाय राम !
दासी प्यासी है तुम्हारे प्रेम की।
प्यास को मेरे बुझाओ हाय राम !
राम ! शरणागत की सुध बुध हो तुम्हें।
आओ ! आओ ! आओ ! आओ ! हाय राम !

सीता विलाप करती हुई झुक झुक कर आकाशीय विमान से नीचे झाँकती जाती थी कि कोई सहायक आजाये। "हाय राम ! हाय राम !" का शब्द इनके होठों पर वहाँ सुनने वाला कौन था ! पहाड़ों ने सुना, पृथ्वी ने सुना, बन के गाछ और वृक्षों ने सुना। "हाय राम ! हाय राम !" का शब्द चारों ओर ऊपर नीचे गूंज उठा और सारा आकाश मंडल उससे भर गया।

पांचवाँ समुल्लास

गिद्धराज जटायु

उस बन में बड़े डीलडौल का एक पक्षी रहता था जो राम का भक्त था और पहिले राम से मिल भी चुका था। उसे लोग गिद्धराज जटायु कहते थे। यह दूर दर्शक ऋषि था। "हाय राम! हाय राम!" के शब्द की गूँज को सुना। उधर कान लगाया। शब्द ऊपर से आरहा था। वह ऊपर उड़ा। देखा कि अबला सीता को रावण आकाशी रथ पर बिठाये उड़ा चला जारहा है। रथ फिरता फिराता हुआ दक्षिण की ओर लंका को जारहा है। उसने ललकारा-"दुष्ट रावण! ठहरजा! तू कायर है जो पराई स्त्री को चुरालाया है। उसे छोड़ दे नहीं तो मैं तेरे सिरों और हाथों को नोंच खसोट डालूंगा और तू मेरी चोंच के घाव से तड़प तड़प कर मरेगा।"

रावण अपनी धुन में उन्मत्त था। उसकी कब सुनने वाला था और उसे समझता क्या था! पक्षी तो पक्षी! यह उसका सामना कब कर सकता था! उसने विमान की कल को ऊपर चढ़ा दिया। गिद्धराज झपटा। उसके सिर पर चोंच मारी। लहू लुहान होगया। फिर हाथों को नोंचा खसोटा। उससे भी रक्त की धार बह निकली। रावण काले पहाड़ के आकर का था। बहता हुआ रक्त गेरू की धार के समान जान पड़ता था। "मूर्ख पक्षी! क्या तू नहीं जानता मैं कौन हूं?"

जटायु ने कहा—"तुझे कौन नहीं जानता। तू अधम पापी और अधर्मी राक्षस है। तेरा यह कृत्य महा नीचहै। छोड़ इसे योद्धा और सूरमा है तो ठहर! राम सीता की खोज में आते होंगे और तेरी हड्डी पसली को बाणों से छेद देंगे।"

रावण—"जा अपना काम कर! मैं अपना काम कर रहा हूँ।

जटायु—"तू नर्क को जारहा है। मैं कभी भी जी ते जी तेरा पीछा न छोड़ूंगा।"

मर मिटूंगा सीता को जाने न दूंगा मैं कभी।
दुष्ट! मारुंगा तुझको मार डालूंगा अभी॥
तू ने क्या समझा है मुझको! काल तेरा मैं बना।
ले संभलजा! चों चों से काटूंगा मैं तेरा गला॥

यह कहा और उसकी गर्दन पर चोंच मारी। वह व्याकुल होगया। कमर से कृपान निकाली और उसके पंखों को काट गिराया। पक्षी का बल उसके पंख ही होते हैं। वह घायल होकर नीचे गिरा और "हाय राम! हाय राम!" करने लगा। ऊपर हाय राम! नीचे हाय राम! सीता की पुकार और जटायु की हाहाकार के शब्द गूंज उठे।

वह पृथ्वी पर गिरा और चित्त हो गया। रावण आकाश मार्ग से सीता को भगा ले गया और लंका की अशोक वाटिका में ले जाकर रक्खा। त्रिजटा (तीन सिर वाली) राक्षसी को उसकी सेवा के लिये नियत किया कि वह भागने न पावे और पहरा चौकी रहे।

रावण ने सीता को बहुत फुलसाया, लालच दिया, पटरानी बनाना चाहा। सीता जी उससे घृणा करने लगीं।

रावण ने कहा :—

मेरी रानी बन के रह, इस में तेरा कल्याण है।
राम क्या हैं निबल नर हैं, उनका तुझको ध्यान है॥

सीता बोली :—

दुष्ट पापी दूर हो, और सामने मेरे न आ।
मृत्यु तेरी आगई है, उससे तू अन जान है॥

रावण:—

मारने वाला मेरा, कोई नहीं संसार में।
हाथ से तुझ को न दूंगा, तू तो मेरा प्राण है॥

सीता :—

राम मारेंगे तुझे, छेदेंगे तुझको बान से।
है धनुष उनका बली, और उनका चोखा बान है॥

रावण:—

राम क्या हैं आयेंगे, खाऊँगा उन को स्वाद से।
कौन रावण से बली, जग में कोई बलवान है॥

सीता :—

तू है गीदड़ ! तू है कायर ! तुझ में बल का काम क्या ?
दुष्ट तेरा आना मेरे, सामने अपमान है।

वह जब जब सीता के पास आया, उन्होंने इसी प्रकार के बचनों से उसका निरादर किया। अशोक की छाया में बैठी हुई सीता जी राम के आने का रास्ता देखने लगीं।

चौथा भाग

पहिला समुल्लास

राम को सीता के वियोग का दुख

राम ने हिरण को मारा। मृग चर्म हाथ नहीं आया। हाँ ! उसे राम धाम को भेज दिया और आप पर्णकुटी की ओर फिरे। राह में लक्ष्मण मिले।

राम ने कहा—"भाई ! तुमने यह क्या किया ? सीता को बन में अकेली छोड़कर यहाँ आना नहीं था। यह जंगल भयानक है और राक्षसों से घिरा हुआ है। इनसे लड़ाई मोल ले

ली गई है। वह बदला लेने के विचार में होंगे। अब सीता का हाथ लगना कठिन है। कौन जाने उनकी क्या दशा होगी।"

लक्ष्मण ने अपनी बेवसी प्रगट की। राम कुटी में आये। वहाँ कोई भी नहीं था। इधर उधर देखा। वह दिखाई नहीं दी। कुटी के चारों ओर घूम फिर कर खोज की। इनका नाम लेकर पुकारा। जब वहाँ कोई हो तो उत्तर दे। राम ने कहा—"सीता तुम कहाँ हो!" और वही शब्द गूंजकर उन्हें सुनाई दिया—"सीता तुम कहां हो?" जैसे कोई किसी को चिढ़ाता हो। यह घबराये। कुटी में ठहरना असम्भव था।

सुनसान कुटी खड़ी हुई थी। बेजान सी वह पड़ी हुई थी॥
बन था वह विचित्र और सघन बन। जो भूले वह खोये अपना तनमन॥
तनमन गया रामचन्द्र का खो। होकर दुखी अन्त में पड़े रो॥
सीता! तू कहाँ छिपी है जाकर। पा जाऊं पता मिलूं मैं आकर॥
आया यहां कौन लेगया कौन! चकमा मुझे आके दे गया कौन!!
ए चन्द्र मुखी! दुखी बहुत हूँ। बतला दे पता कि जाके खोजूँ मैं॥
जोड़ा मेरा मिलके कैसा बिछुड़ा। सुलझा हुआ काम कैसा बिगड़ा॥
तू प्राण है प्राण से भी प्यारी। आपति पड़ी है तुझ पै भारी॥
हूं हूं कहां! किससे जाके पूछूं। तू है कहाँ चलके तुझको खोजूं॥

यों विलाप करते हुये नदी नाले और पर्वत लांघते हुये राम सीता की खोज में निकले। कोई उन्हें देखता तो कहता कि यह कामी पुरुष है और कामिनी के वियोग में मारे मारे फिर रहे हैं लेकिन यह केवल नर लीला थी। जैसा काछ काछे वैसा नाच नाचे! जैसा स्वाँग भरे वैसा खेल करे। वह आगे बढ़े। देखा कि गिद्धराज जटायु पृथ्वी पर घायल पड़ा हुआ "हाय राम! हाय राम!" कर रहा है। पूछा—"किसने तेरी यह गति बनाई है?" इसने आँख खोली। सुधि बुधि

आई। राम को सामने खड़ा देखकर नमस्कार करके बोला—"भगवन! यह दुर्गति रावण ने की है। मैं इधर उड़ा जा रहा था। आकाश मंडल में "हाय राम! हाय राम!" का शब्द गूँज रहा था। ध्यान करके देखा कि रावण सीता को पुष्पक विमान में बिठाये लिये जा रहा है। वह धाड़ें मार मारकर रोती और चिल्लाती थीं। मैंने रावण को समझाया। इस अबला को छोड़ दे। इसे न सता। उसने मेरी नहीं सुनी। मैंने अपनी चोंच से इस पर आक्रमण किया। वह घायल होगया और तलवार निकालकर मेरे दोनों पंख काट दिये। सिर और गले पर वार किया। मैं गिर पड़ा और वह उस सती को उड़ाकर ले गया। यह मेरा वृतान्त है।"

राम ने उसे संतोष दिया। "अब तू इस क्षणभंगी शरीर और इस संसार की ममता को त्याग दे। मैं रावण के कुल का नाश किये बिना न रहूँगा। संसार में इसी निमित्त मेरा जन्म हुआ है।"

जटायु ने लम्बी सांस भरी। राम को खुली आंखों से देखा। स्तुति करते और उनका गुण गाते हुये हिचकियाँ ली और उसकी आंखें फिर नहीं खुलीं। सारा शरीर क्षण मात्र में ठंडा हो गया। लक्ष्मण ने बन की लकड़ियां चुनी, चिता बनाई, उसके मृतक शरीर को उस पर रक्खा, दोनों कटे हुये पंखों से उसे ढक दिया और राम ने चकमक पत्थर से आग निकालकर उसका दग्ध कर्म किया और वह थोड़ी ही देर में राख का ढेर बन गया।

आये हैं जो जायेंगे, साधू राजा रंक।
रहना है दो चार दिन, जाना है निःशंक॥
एक स्वर्ग को जायगा, एक नर्क में वास।
कोई सुखी होकर मरा, कोई मरा निरास॥

जो जन्मा सो मरेगा, मरना विस्वाबीस।
भजि भजि मर नर बावले, भज सतगुरु जगदीश॥

दूसरा समुल्लास

शवरी भीलनी से मिलाप

राम लक्ष्मण सीता को खोजते हुये आगे बढ़े। आगे कनबद्ध राक्षस दौड़ता हुआ आया। इन पर झपटा। राम ने अपने बाण से उसको ठौर ठिकाने लगा दिया।

यह 'कनबद्ध' पेट का गंधर्व है, जो साधन करने वाले तपस्वियों को सताता रहता है। दुर्वासा के श्राप से यह बिना सिर का ठूंठ बन गया था। संस्कृत 'कन' (सिर) और 'बद्ध' (दुखी करना, मारना) सिर को जिससे दुख पहुँचे, वह कनबद्ध है। यह और कुछ नहीं है, मनुष्य शरीर में यह पेट है जो अपना ही गीत गाता रहता है और मस्तिष्क में रहने वाली शक्तियों (चित, मन, बुद्धि और अहंकार) को दुखी करता रहता है। दुर्वासा (दुर-बुरी और वासा—वासना) ऋषि थे जो खाते बहुत थे। उसके हाथ से बहुत तंग हुये और उसे श्राप दिया। वह राक्षस हो गया। यह राम पर झपटा, राम ने उसे उसी बन में मार कर संतुष्ट कर दिया और फिर उसने इनके सताने का नाम नहीं लिया।

प्रेमियों के तीन लक्षण को सुनो।
बोलना कम नींद और आहार खो॥
खाओ कम और बोलो कम और सोओ कम।
जप में तप में जब भरो साधन का दम॥
साधन में प्यार इनका है बुरा।
साधु इन से बच के रहता है सदा॥

कनबद्ध के आक्रमण से बच कर यह शवरी भीलनी के

झोंपड़ा पर आये। यह जंगल की भीलनी थी, जिसे अपने रूप का भी चेत नहीं था। भीलनी तो भीलनी होती है। हाँ, उसमें प्रेम और प्यार बहुत था। जिधर झुकी, उधर झुकी! दिखावा नहीं! बनाव श्रंगार नहीं! बनने ठनने की इच्छा से रहित! एक धुन, एक ध्यान और एक दशा में रहने वाली! समझ बूझ सब अपने इष्ट के निमित्त अर्पण किये हुये! जी ते जी मरी हुई! राम इससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये। यह उन्हें देखकर मग्न होगई। तन मन की सुध तो पहले भी नहीं थी, दर्शन पाते हुये अपने आपे को भूल गई। जब चेत आया, आसन पर बिठाया। फल, फूल, कंद, मूल लाकर आगे रक्खे। कहते हैं यह इतनी सरल स्वभाव वाली थी कि इसने राम को अपने झूठे बेर खिलाये और राम उसके प्रेम स्वरूप को देखकर मग्न हो गये।

जब मनुष्य सुवासना, सत्संग, दीक्षा, चित्रकूट का मनन, विराध (विरोधी वृति) सूर्पनखा वध (स्थूल रूप काम अंग का नाश) खर (गधापन) दूषण (द्वेष वृति) त्रिसरा—(सत, रज, तम के त्रिगुणात्मक विकार) का नाश कर लेता है तब इसमें प्रमाद आजाता है। इससे रावण (रजोगुण) प्रधान होकर उसकी सीता-(सुषुम्ना वृत्ति) को हर लेता है। तब वह व्याकुल होकर इसकी फिर प्राप्ति में लगता है! कनबद्ध (खाना) आलस्य और प्रमाद को वशीभूत करके अंत में उसे भक्ति की सूझती है जो सबसे सुगम और सहज साधन है और यही भक्ति उसे सुषुम्ना वृति (सीता) की पुनः प्राप्ति का उपाय सुझा देती है। इसी भक्ति का नाम शवरी है। संस्कृत 'शव' (मुर्दा) और 'रा' लेना, यह जंगली रूप वाली होती है।

दिखावा नहीं ! बनावट नहीं ! जीते जी मर जाना, किसी को अनुमान तक न होने देना कि यह भक्त है।

राम ने नर-लीला में इसके सारे साधनों और उनके भेद को अपने चरित्र में भली भाँति दर्शा दिया है। रामायण की कथा अलंकृत और कथा प्रसंग को लिये हुये है। इसका मन्तव्य साधन और कथा को रोचक बनाकर समझा देना है।

भक्ति सुगम साधन सहज, सरल भाव लौ लाय।
गुरु की कृपा महान से, धर्म मोक्ष फल पाय॥
दिखलावे की भक्ति का, नहीं आदर सम्मान।
जीते जी मर कर मिटे, तब पावे निर्वाण॥
भक्ति भाव भादों नदी, चली बही गहराय।
सरिता सोई सराहिये, आठ मास ठहराय॥
जैसी लौ पहले लगी, तैसी अन्त रहाय।
अपने जीव को कहै, लाखों तरे तराय॥
दिखलावे की भक्ति को, भक्ति प्रेम मति जान।
भक्ति है जीते जी मरण, यह निश्चय कर जान॥
माला पहिनी सात लर, यह माला है छल।
मन माला को फेरिये, भक्ति का तब मिले फल॥
तिलक त्रिपुण्ड लगाय कर, माथा लिया सजाय।
भक्ति सुषुम्ना साधना, पिंगला ईड़ा बिलगाय॥

शबरी ने राम से कहा—"मैं नीच अधम हूँ। न मेरा कुल है न मेरी जाति है। भीलनी तो भीलनी ! न मुझमें बुद्धि है, न कर्म है, न उचित अनुचित की समझ है। मैं तो तुम्हारी स्तुति करना भी नहीं जानती। तुम्हें कहूं भी तो क्या कहूं, मैं भीलनी हूँ। माँ बाप विवाह करने लगे। सैकड़ों भेड़, बकरे मारने के लिये बाँधे गये कि महिमानों को उनका माँस खिलाया जाये। हजारों मटके मदिरा से भर कर रक्खे गये

कि उन्हें पिलाया जाये। मुझे यह अच्छा नहीं लगा। जिस उत्सव में इतना प्राण बध हो उसका अन्त में परिणाम भी दुख ही होगा। मैं रात को उठी। बंधे हुये पशुओं को खोलकर भगा दिया। बन में भाग आई। गुरु मिले। उनकी सेवा टहल करने लगी। उनका नाम मतंग (संस्कृत-'मद' सुखी रहना, सुखी करना) ऋषि था। मुझे देखकर सुखी हुये। जाति-पांति का विचार नहीं किया। सेवा टहल स्वीकार की वह तो परमधाम को गये। मुझसे कह गये कि तू धीरज रख। राम (रमने वाले, सुख स्वरूप भगवान) तुझे आकर दर्शन देंगे। मैं वर्षों से तुम्हारी राह देख रही थी। बहुत दिन लगे। तुम आये। दर्शन दिया। अच्छा किया, तुम राम हो। आनन्दघन हो। देख लिया। संतुष्ट हो गई। इच्छा पूरी हो गई। अब और कुछ नहीं चाहिये। जो कुछ होना था हो चुका। बस इतना ही बहुत है।"

राम कहत बीता दिवस, सोवत बीती रात।
राम दर्श बिनु क्या करूँ, समझ न आये बात॥
जिभ्या में छाले पड़े, नाम पुकार पुकार।
आँखों में छांईं पड़ीं, पंथ निहार निहार॥
तुम आये दर्शन मिला, देखा विमल स्वरूप।
मैं सेवक बिन दाम की, तुम मेरे सत भूप॥
तुम आये शीतल भई, मिला गया सुख आनंद।
चित चकोरिनी दृष्टि में, तुम मेरे हो चंद॥
तुम ही पूर्ण काम हो, तुम हो मोक्ष प्रभाव।
अर्थ धर्म तुम हो मेरे, पड़ गया पूरन दाव॥

शबरी ने फिर कहा—"तुम मुझे मिले, सब कुछ मिल गया। अब न कुछ मुझे माँगना है, न याचना है।"

तुम हो मेरे मातु पितु, तुम विद्या तुम धन।
तुम शरीर नस नाड़ी हो, तुम हो मेरे मन॥
तुम भाई तुम सखा हो, तुम सम्बन्धी मीत।
मिल गये तुम सब कुछ मिला, होगया शीतल चीत॥

राम ने कहा—"मैं भी कर्म, धर्म, ज्ञान, वैराग्य की तरफ ध्यान नहीं देता। मैं केवल भक्ति का नाता मानता हूं। भक्ति में जात पांत नहीं है। यह सामाजिक व्यवहार है। इसका अधिकार संस्कार भक्ति में नहीं रहता। भक्ति करना ही सच्चे भक्तों का अधिकार संस्कार है। यह भक्ति गुरु की कृपा से मिलती है और तुझे मतंग ऋषि से मिली, जो आनन्द रूप मतवाले हाथी के समान मस्त और सुखी रहते थे। वह संत थे। मेरे भक्त संतों को मुझसे अधिक मानते हैं।

यह भक्ति नौ प्रकार की होती है। पहिली पांच इन्द्रियों की भक्ति जो तत्वों से सम्बन्ध रखती है। यह सेवा टहल है। आंख से रूप को देखना, कान से बचन सुनना, हाथों से पावों को छूना, नाक से चढ़ाये हुये फूलों को सूंघना और जिभ्या से चरणामृत का रस लेना। जो इस प्रकार की इन्द्रिय भक्ति करता है, उसे फिर चार प्रकार की ऊँची मानसिक भक्ति का आप अवसर मिल रहता है।

चित्त से गुरु के शब्द (बचन) का चिंतन, मन से गुरु की बाणी का मनन, बुद्धि से सार पदार्थ को छाँटकर निर्णय करते रहना और उसके अनुसार अपनी रहनी बना लेना और अहंकार से इष्ट पद का अभिमानी बनकर उसमें आरूढ़ हो रहना।

यह नौ प्रकार की नवधा भक्ति कहलाती है। जो ऐसी भक्ति करता है उसके लिये कुछ दुर्लभ नहीं है। तू मुझे प्यारी है और तुझसे बढ़कर मैं और किसी को नहीं जानता।"

शबरी हँसी—"उल्टी सुल्टी बात ! मेरा काम तो तुम्हारा दर्शन पाकर हो गया और जब मैं और तुम दोनों एक हैं तो मुझे तो कुछ नहीं चाहिये। मेरे सर्वस्व तुम हो। अब तुम अपना काम कहो, क्या चाहते हो।"

राम बोले—'सीता हरी गई। मेरी सुषम्ना वृति का हरण हो गया। मैं दुखी हूँ। भक्ति भक्तों को नई २ सूझ सुझाती है। यह उसका स्वभाव है। तू भक्ति का रूप है। मुझे वह उपाय बतादे कि मेरी खोई हुई सीता फिर मेरे हाथ लगे।"

शबरी मुस्काई—"तुम जानकर अनजान बनते हो। यह तुम्हारी लीला मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं।"

जान बूझ कर पूछी बात। मैं क्या कहूँ खोल विख्यात॥
पंपापुर में करो निवास। वहां सुग्रीव बनेगा दास॥
उसके संग तुम करो मिताई। मन, बच, कर्म करे सेवकाई॥
सो सीता का खोज लगाये। बिगड़ा हुआ सब काज बनाये॥
बानर कुल की यह है रीती। निज स्वामी हित पाले प्रीती॥
बानर साध सधे सब काम। बानर मीत बनाओ राम॥
बिन सुग्रीव काज नहीं होगा। वह नहीं देगा तुमको धोका॥

राम शबरी की बात सुनकर प्रसन्न हुये।

शबरी ने फिर उनसे सरल भाव से और नम्र वाणी से कहा—"सुनो राम ! अब तक तुम मुझमें बसते थे। मेरा हृदय वर्षों से तुम्हारा निवास स्थान बना था। अब मैं इस शरीर को रखना नहीं चाहती। मतंग ऋषि कह गये थे कि राम का मिलना तेरी अन्तिम अवस्था है। अब मैं अपनी बारी पर तुममें बसना चाहती हूं। भक्त और भगवन्त का परस्पर सम्बन्ध होता है। कभी नदी नाव में, कभी नाव नदी में !

अब तक लोग मुझे देखते थे। अब कोई न देखे। देखने दिखाने से मुझे चिढ़ सी हो गई है। चित्त उपराम होगया है।

पहिले मैं थक थक गई, सुमिर २ कर नाम।
आप मिलोगे कौन दिन, मेरे प्यारे राम॥
राम मिले ममता गई, रमता राम को देख।
अलख लखा लालच लगी, सूझा अगम अलेख॥
तुम तो मुझ में रम गये, तुम में रमूं मैं राम।
रम रम कर रम २ रहूं, मन पावे विश्राम॥

मेरे सामने खड़े हो जाओ! मैं तुमसे और तुम्हारे रूप से आँख लड़ाऊँ। यक टक दृष्टि से तुम्हें देखकर तुमको आंख में, हृदय में, एड़ी चोटी में बसालूँ और तुम में समा जाऊँ।

नैनों अंदर आव तू, नैन झाँप तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन दूँ॥

राम उसके सामने वीर रूप में धनुष बाण लेकर खड़े हो गये। वह दर्शन करने लगी। दृष्टि से दृष्टि मिली। दृष्टि साधन हो गया। तीन हिचकियां आईं। आंखें बन्द हो गईं और शबरी ने प्राण त्याग दिये।

राम ने अपने हाथ से चिता बनाई। मरी हुई शबरी (शव=मृत्यु, रा=लेना) को उस पर लिटा दिया। आग दी। ज्वाला प्रकटी। शरीर का सार तत्व अग्नि विमान पर चढ़कर कहाँ चला गया, कौन जाने! वहाँ देखने में तो राख का ढेर प्रतीत हुआ और उसका प्राण राम के प्राण में मिल गया।

तीसरा समुल्लास

बसंत ऋतु और राम का विरह

शबरी का अन्त्येष्टि संस्कार करके राम और लक्ष्मण ने उस बन से भी कूच किया। दोनों भाई साथ साथ चले। वह

चलते हुये कछार के दो निडर सिंहों के समान प्रतीत होते थे।

यह तो निडर स्वभाव ही से थे। बन के पशु पक्षी भी इनके प्रभाव को देख कर निडर हो गये। कोई इन्हें देख कर भागता नहीं था, बल्कि इनके सुहावने, सुन्दर रूप को देख कर यकटक देखने लग जाता था।

यह एक दिन घने जंगल में पहुँचे। वह रमणीक था। वर्षा ऋतु का समय! पृथ्वी हरी भरी! वृक्ष हरे भरे, पत्ते फल फूलों से लदे हुये! यह घूमते फिरते हुये चले जा रहे थे।

राम ने कहा—"लक्ष्मण! जब हम अहेर (शिकार) खेलने निकलते थे, पशु पक्षी डर से भाग निकलते थे। एक वह दिन था और एक दिन आज है कि यह खड़े हो कर मेरा मुँह ताकते हैं। तुम जानते हो ऐसा क्यों है?"

लक्ष्मण ने कुछ उत्तर नहीं दिया। राम ने कहा—"इसका कारण यह है कि जब हिरण और बारहसिंगे भागने पर आते हैं इनके जोड़े समझाते हैं तुम इन से न डरो। यह सोने के हिरणों के खोजी हैं। इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।" "विनाश काले बिपरीत बुद्धि।" भला कहीं सोने का भी हिरण होता है। ऐसा कभी न देखा गया, न सुना गया और सोने के हिरण की खोज में राम का जोड़ा बिछुड़ गया। अब यह अकेले नारी विहीन होकर सोने के हिरणों की चिन्ता में रहते हैं। इनसे क्या डरना है। यह मुझे उपदेश दे रहे हैं, "द्रव्य हाथ की' जोरू साथ की।" लक्ष्मण कुछ न बोले।

राम ने कहा— 'उड़ते हुये पक्षी हमारे सिर और कंधों पर आ आ कर बैठ जाते हैं। यह क्यों ऐसे निडर हो रहे हैं। कारण यह है कि वह सब मुझे शक्ति हीन समझते हैं। सीता मेरी शक्ति थी। वह खो गई। मुझ में शक्ति नहीं रही। कोई डरे तो क्यों डरे!'

लक्ष्मण बोले—"नाथ! बन में आने से आपकी हिंसा वृति दूर हो गई। अहिंसा परमोधर्मः। आप धर्मात्मा हैं। हिंसक से प्राणी मात्र भय खाते हैं। अहिंसक से कोई नहीं डरता। सब उससे प्रेम करते हैं। यह आपकी प्रेम वृति से मोहित होकर आपको अपना रूप समझ रहे हैं।"

राम हंसे—"बसन्त ऋतु है। बन, पर्वत, नदी, तालाब सब कैसे शोभायमान हो रहे हैं। मोर नाचते हैं। कोयल कू कू कर रही हैं। कबूतर और पिंड़की अपने जोड़ों के साथ विचर रहे हैं। सुगन्धित फूलों की सुगन्ध से सारा बन मह महक कर रहा है। तीतर फुदकते हैं, भौंरे मंडला रहे हैं और कैसी रुचि के साथ खिले हुये कमल की पंखड़ियों के होंठ झूम रहे हैं। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों है?"

लक्ष्मण चुप! कहते भी तो क्या कहते! साधारण मनुष्य देखता तो निःसन्देह कह उठता कि राम सीता के वियोग में पागल बन गये हैं और पागलों जैसी बात चीत कर रहे हैं।

राम आप ही बोल उठे—"बसन्त ऋतु काम देव का बाहन है। यह हाथों में फूलों के धनुष लिये हुये फूलों ही के बाण से पुरुष और स्त्रियों के हृदयों को बेधता रहता है।"

इसने अपना दल संवारा, अपना साज सजाया। क्यों? मेरे ललचाने और लज्जित करने के लिये! वह यों खुले मुँह से तो कुछ कहता नहीं, हां मानसिक भाव से हंस हँसकर खिल्ली उड़ाकर कह रहा है—"और जाओ, सोने का हिरण मारो। सोने का सुख तो उसे है कि जिसके साथ स्त्री है। जो स्त्री को खो बैठा है वह सोने के सुख को क्या जानेगा। सोने के हिरण की खोज में जो सोने जैसी स्त्री को गंवा बैठा उस पर मैं अपने पुष्प बाण से क्या आक्रमण करूँ।" कामदेव

मुझे अपनी शक्ति और अपनी सम्पदा को दिखा दिखाव लज्जित कर रहा है।"

लक्ष्मण फिर चुप !

राम बोले—'केले के पौधे कैसे लहलहाते हुये पत्तों परस्पर हाथ मिला रहे हैं। उनके हरे हरे पत्तों अपनी कोम लता के दृश्य दिखा रहे हैं। फल नीचे की ओर लटक रहे हैं तुम जानते हो ऐसा क्यों है ?"

लक्ष्मण चुप !

राम बोले—'आकाश और पृथ्वी परस्पर मिल रहे हैं परस्पर प्रेम का बर्ताव कर रहे हैं। मैं किसके साथ बैठ उठूं ! मेरा जोड़ा बिछुड़ गया। हाय सीता ! हाय सीता ! कहाँ चली गई !

तू समुन्दर में छिपी हो, जल के उसकी थाह लूं।
उड़ गई आकाश को, आकाश की मैं राह लूं॥
पृथवी में धंस गई, उसका कलेजा फाड़ दूं।
बादलों में जा छिपी हो, बाणों से मैं झाड़ दूं॥
हाय सीता ! हाय सीता ! हाय वह क्या हो गई।
आप मैंने खोजा उसको, और मुझसे वह खो गई॥

लक्ष्मण को बड़ा दुख हुआ। वह केवल नर लीला थी जो राम कर रहे थे। लक्ष्मण इसे जानते भी थे। फिर भी वह राम को शांत और निभ्रान्त देखना चाहते थे। राम चुप हो रहे। लक्ष्मण को और अधिक चेतावनी नहीं देना चाहा।

पांचवां भाग

पहिला समुल्लास

नारद

एक सुन्दर, गहरा और निर्मल जल से भरा हुआ सरोवर मिला। उसके चारों ओर छोटे बड़े वृक्ष खड़े हुये थे। उनकी छाया पानी में दिखाई देती थी। ऐसा प्रतीत होना था जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों जड़ से जड़ मिलाये जुड़े थे। सम्भव था कि राम उस दृश्य को देखकर लक्ष्मण से कुछ और कहते लेकिन समय नहीं था। वहां देवताओं का समाज उनसे मिलने के लिये आ गया। राम ठहर गये। पत्थर की चट्टानें अधिकता के साथ वहाँ बिछ रही थीं। एक चट्टान पर राम और उनके सामने की चट्टान पर लक्ष्मण बैठ गये और देव गण ने भी वहां उचित स्थानों पर आसन जमाया। यह आये, मिले, परस्पर बात चीत की और मिल जुल कर चले गये। दोनों भाई अकेले बैठे रहे।

नारद कहीं जा रहे थे। राम को देखा। वह सीता के विरह में उन्मत्त बने हुये थे। मन में प्रेम उत्पन्न हुआ। आये और प्रणाम किया। राम ने सम्मान करके आसन दिया। नारद ने कहा—"हाय प्रभो! मैं बड़ा अपराधी हूँ। यह जो आपको दुख हो रहा है, इसका कारण मैं ही हूं। मैं पामर जीव हूं। आपकी माया बड़ी प्रबल है और हम सब जीव उसके हाथ में कठपुतलियों के समान नाचते रहते हैं। आपने मुझे विवाह करने से क्यों रोका? न आप रोकते न मैं आपको श्राप देता। यह आपकी बहुत बड़ी महिमा है कि हम नीच जीवों के बचन का निर्वाह करते रहते रहते हैं। आपके अति-

धरा रूप शिव का कैलाश ठहरा।
हुआ सांस सांसों की, मैं सांस ठहरा॥
है क्या जगत ! माया का मेरा पसारा।
निराधार हो के, हूं सब का सहारा॥
मेरा शब्द कोयला के, मुँह का है कू कू।
मेरी शक्ति कहती है 'मैं' 'मैं' में 'तू' 'तू'॥
हूं फुदकी के मैं चोंचों का आप चू चू।
सुनो आग में, रहके करता हूँ सू सू॥
मुझे कहते हैं ओ३म्, यह नाम मेरा।
मेरी साँस प्रणव है, और काम मेरा॥
जो सत् हूं तो सत् का सतोगुण हुआ मैं।
हूं तम और तम का तमोगुण हुआ मैं॥
हुआ व्याप्त रज में, रजोगुण हुआ मैं।
हुआ गुण से पृथक तो निर्गुण हुआ मैं।
प्रकृति हूँ मैं और मेरे सहारे प्रकृती।
मैं ही ऋद्धि सिद्धि, मैं ही योग युक्ति॥

लीला, लीला मात्र है। किस दुविधा में फिर पड़ गये। ऐसे संशय को चित न दिया करो। लीला देखो और अपना काम बनाओ। नारद की आँखें खुली।"

धन्य महिमा आपकी है, धन्य अद्भुत ज्ञान है।
आपही के पद कमल में, सद्गति निर्वाण है॥

प्रभो ! यह वर दीजिये कि त्रेता के इस अन्तिम भाग से लेकर द्वापर और कलियुग में 'राम' नाम की गूंज हर जगह में गूंजी रहे और इस नाम में सब योग युक्ति, ऋद्धि, सिद्धि निद्धि शक्ति का फल प्राप्त करें।

यही होके अनहद, करे काम सबका।
इसीसे हो कल्याण, विश्राम सबका॥

यही मुख्य हो नाम और, नाम सबका।
यही ठहरे पर लोक में, धाम सबका॥
यही वर मिले मुझको, वरदान दीजे।
इस से हो कल्याण, कल्याण कीजे॥

राम ने कहा—"एवमस्तु" और पांव पड़कर, वींड़ा बजाते नाचते गाते, प्रेम में निमग्न होकर जिधर को जा रहे थे चले गये।

दूसरा समुल्लास

नारद की कथा

एक समय नारद तपस्या कर रहे थे। इन्द्र को भय हुआ कि कहीं तपो बल से मेरा इन्द्रासन न छीन लें। अप्सराओं को सिखा पढ़ाकर भेजा कि नाना प्रकार से इस तपस्वी के तप को भंग कर दो।

वह आईं, बैठीं, नाचीं गाईं, भाव बनाये, करतब दिखाये, परन्तु नारद पर इनका प्रभाव नहीं पड़ा। इन्हें प्रमाद और घमंड हुआ कि मैंने काम को जीत लिया।

बिष्णु लोक में गये, विष्णु को प्रणाम करके बोले—"प्रभो! मैं ही अकेला इस संसार में आपका सच्चा भक्त हूं। काम मेरे तप को भंग करने आया। वह मेरा कुछ भी न कर सका। हार मान कर चला गया। मैंने उसे जीत लिया।"

विष्णु हँसे मुस्कराये—"तुम्हारे लिये काम को जीत लेना कितनी बड़ी बात है। संत जो चाहें कर सकते हैं।"

नारद घमंड में चूर, नमस्कार करके लौटे। विष्णु ने माया को प्रेरणा की—"जाओ, अभी इस घमंडी के गर्व पात्र को तोड़ फोड़ कर दो।"

माया ने अपना चमत्कार दिखाया। नारद के रास्ते में

एक सुन्दर और विचित्र नगर रच दिया। यह भौचक्के रह गये। जंगल में यह मंगल कैसा! नगर में गये, राजा से मिले। इसने अपनी शोभा रूप कन्या को दिखा कर पूछा—"इसे कैसा वर मिलेगा? कल स्वयंवर होगा।" नारद ने कन्या का हाथ पकड़ा। उसकी काम वृत्ति भी इनके रग रग में दौड़ गई। कहने को तो यह कह दिया कि यह लक्ष्मी है, लेकिन मोहित हो गये। मन में सोचने लगे—"क्या अच्छा हो जो यह कन्या मुझे अपना वर बनाले! विष्णु महा सुन्दर हैं। चलो, उनसे उनका रूप मांगकर कल स्वयंवर में जाऊँ और इसे ब्याहूं। विष्णु लोक में गये। विष्णु से प्रार्थना की—"अपना रूप मँगनी दीजिये।" विष्णु का नाम हरी भी है और हरी बन्दर को भी कहते हैं। उनको वर दिया। इनका मुँह बन्दर जैसा हो गया।

यह आये। स्वयंवर शाला में ऊँची जगह बैठे। राज कन्या तीन बार घूमी फिरी। यह उछल उछल कर मुँह बनाते और आखें मटकाते रहे। वह हँस कर चली जाती थी। अन्त में विष्णु के गले में जैमाला डालकर उनके साथ स्वर्ग को चली गई।

नारद निराश होकर बड़ बड़ा उठे—'मुझ से अधिक सुन्दर आज इस संसार में कौन है। कन्या ने मुझे क्यों नहीं ब्याहा।" पास ही विष्णु के तीन द्वारपाल इनका उछलना कूदना देखकर मुस्कराते और हँसी ठट्ठा करते रहे। इनसे कहा—"बन्दर राज! पानी में जाकर अपना रूप तो देखो।" यह गये, पानी में अपना रूप देखा।

सब रूप था लंगूर का और दुम की कसर थी। लौटे, द्वारपालों को श्राप दिया—"जाओ" राक्षस हो जाओ और क्रोधाग्नि में भरकर विष्णु की सभा में पहुँच कर दुर बचन

कहा—"छली, कपटी! मुझे बन्दर बनाया। मेरी चहती कन्या को हर लिया। जाओ, नर शरीर में प्रवेश करो और बन्दरों से सहायता लो।"

विष्णु हँसे—"एवमस्तु" और माया ने अपना प्रभाव समेट लिया। विष्णु बोले—"तुम को हो क्या गया! अभी गये, अभी आये, आसन गर्म का गर्म है। यह कुछ न बोले। लज्जित होकर बाहर आये। तीनों द्वारपाल मिले। अब नारद नारद थे, बन्दर नहीं रहे थे। अपराध की क्षमा मांगी।" नारद को दया आई। कहने लगे—"राक्षस तो तुम अवश्य होगे। विष्णु से बैर भावना करना। तीन जन्म में तम्हारा उद्धार होगा।" यह रामावतार नारद के श्राप से हुआ था, जिसका वर्णन संकेत मात्र पहले समुल्लास में आगया है और विष्णु के सेवक देवता बन्दरों के रूप में प्रकट होकर दक्षिण देश में इनकी प्रतीक्षा करने लगे। तीनों द्वारपाल, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण हो गये, जिनकी लीला आगे के खंडों में आयेगी।

महारामायण तृतीय (बन साधन) खंड

समाप्त